जगन्नाथदास 'रत्नाकर'
कृत

उद्धव शतक

सम्पादक · डॉ. विजयेन्द्र स्नातक

कन्दर्प
प्रकाशन

© १६८४
विभा जन
नई दिल्ली

द्वितीय सस्करण | अन्नकूट १६८६

प्रकाशक | श्रीमती विभा जन
कन्दर्प प्रकाशन
२१ दरियागज, नई दिल्ली २

मूल्य | १२ ०० छात्र सस्करण
३० ०० सजिल्द

मुद्रक | नागरी प्रिंटस द्वारा
ग्रथशिल्पी, दिल्ली 32

Udhav Shatak by Shri Jagnnath Dass Ratnakar' Ed by Prof Dr Vijyendra Snatak Published by Kandarp Prakashan, 4662/21 Daryaganj New Delhi 2

प्रकाशकीय निवेदन

आधुनिक ब्रजभाषा के मुख्य कवि स्वर्गीय श्री जगन्नाथ दास 'रत्नाकर' की कालजयी कृति 'उद्धव शतक' बीसवीं शताब्दी की अप्रतिम रचना है। ब्रजभाषा का स्थान आज यद्यपि खड़ी बोली ने ले लिया है किन्तु 'उद्धव शतक' अपनी सरल भाषा के लालित्य और लावण्य तथा भाव सौन्दर्य के माधुर्य एवं मादकता के कारण हिन्दी काव्य जगत में पूर्ण सम्मान के साथ प्रतिष्ठित है। पठन-पाठन परम्परा में ही नहीं वरन कविता प्रेमी रसिक समाज में भी यह उत्तम कोटि की काव्य कृति के रूप में समादृत है।

'उद्धव शतक' का प्रथम संस्करण रत्नाकर जी के जीवन काल में बड़ी सज धज के साथ रसिक समाज, प्रयाग से श्री रमाशंकर शुक्ल के सम्पादकत्व में प्रकाशित हुआ था। इंडियन प्रेस, प्रयाग प्रकाशक था। रसालजी ने बत्तीस पृष्ठों की विद्वतापूर्ण भूमिका लिखी थी। उस समय उनकी भूमिका छात्रोपयोगी थी और उद्धव शतक के मर्म को उद्घाटन करने वाली थी। आज समीक्षा क्षेत्र का विस्तार हो गया है। कुछ ऐसे बिन्दु काव्यालोचन में उभरे हैं जो द्विवेदी-युगीन समालोचना में नहीं थे। अतः साठ वर्ष के बाद 'उद्धव शतक' को नई समीक्षा के आलोक में प्रकाशित करना हमें उचित प्रतीत हुआ।

'उद्धव-शतक' की आलोचना के लिए हमने सम्पादक महोदय से विस्तृत भूमिका लिखने का अनुरोध किया था। हमारे अनुरोध को स्वीकार कर उद्धव-शतक के मर्म को उद्घाटित करने वाली भूमिका लिखकर इस नव सम्पादित उद्धव-शतक को बीसवीं शती के अन्तिम चरण में पुनः पठनीय बना दिया है है। ब्रज-भाषा के साहित्यिक एवं आंचलिक क्लिष्ट शब्दों के अर्थ भी पुस्तक के अन्त में दे दिए गए हैं।

मैं अपनी प्रकाशन संस्था की ओर से विद्वान सम्पादक श्रद्धेय प्रो० विजयेन्द्र स्नातक महोदय के प्रति आभार व्यक्त करती हूँ। उन्होंने ब्रजभाषा की इस कालजयी कृति को पुनः लोकप्रिय बनाने में हमारा सहयोग किया है।

—प्रकाशक

अनुक्रम

१

कविवर रत्नाकर का जीवन-वृत्त

बाबू जगन्नाथदास रत्नाकर के पूर्वज हरियाणा प्रान्त के पानीपत जिले के निवासी थे। पानीपत की प्रसिद्धि तो युद्धस्थली होने के कारण है किन्तु सफीदो गाव जहा रत्नाकर जी के पूर्वज रहते थे पौराणिक आख्यान से जुड़ा हुआ है। सफीदा को सर्पदमन का अपभ्रष्ट रूप कहा जाता है। जनमेजय ने सर्प कुल विनाश के लिए यही नागयज्ञ किया था। पानीपत के सफीदो गाव से इनके पूर्वज कब बाहर निकले और कहा-कहा जाकर बसे, इसका पूरा विवरण तो उपलब्ध नही है किन्तु पारिवारिक किम्वदंतियो के अनुसार सम्राट अकबर के समय यह वैश्य परिवार दिल्ली आ गया और मुगल साम्राज्य म उच्च पदो पर काय करता रहा। मुगल साम्राज्य के पतन होने पर इस परिवार के लोग दिल्ली छोड कर लखनऊ आये। यहा पर भी इस परिवार के लोग धनी-मानी व्यक्तियो मे गिने जाते थे। इस परिवार के पूवज सेठ तुलाराम धनधान्य सम्पन्न होने के साथ कुशल नीतिज्ञ तथा दानवीर क रूप म प्रसिद्ध थे। जहादार शाह के दरबार मे सेठ तुलाराम का सम्मान था। जहादार शाह सेठ जी को यात्राओ म अपने साथ ले जाते थे और उन्हे पूरा आदर देते थे। एक बार काशी यात्रा पर सेठ तुलाराम इनके साथ गये और गगा का मनोहर दृश्य देखकर इतने मुग्ध हुए कि शिवाला घाट पर मकान खरीदकर वही बस गए। उसी समय से यह वैश्य परिवार काशी वासी हो गया। आज भी इस वैश्य कुल का शिवाला म ही निवास है। व्यापार मे लाभ होने पर सेठ तुलाराम तथा उनके पुत्र सगमलाल ने काशी मे और भी मकान खरीद कर प्रचुर सम्पत्ति अर्जित कर ली थी। इस प्रकार रत्नाकर जी के प्रपितामह, पितामह और पिता वैभवशाली परिवार से सयुक्त रहे हैं। सेठ तुलाराम के पुत्र सेठ सगमलाल और सेठ सगमलाल के पुत्र पुरुषोत्तम दास और पुरुषोत्तम दास क पुत्र बाबू जगन्नाथ दास रत्नाकर है।

बाबू जगन्नाथदास का जन्म विक्रमी सवत १९२३ (सन १८६६ ई०) की भाद्रपद शुक्ला पचमी को काशी मे हुआ। अपनी जन्म तिथि का सकेत रत्नाकरजी

ने स्वयं बिहारी रत्नाकर की टीका ग्रंथ मे लिखा है। जगन्नाथदास जिस कुल मे उत्पन्न हुए थे, उसका चिरकालीन सम्बन्ध मुगल राज-दरबारो से रहा था। अत फारसी का प्रचलन स्वभावत इस परिवार मे वशानुक्रम से चला आ रहा था। शैशव म जगन्नाथ दास को भी फारसी भाषा का अभ्यास कराया गया। फारसी उर्दू भाषा के अध्ययन से इन्हें भाषा का यह सस्कार सुलभ हो गया जो उन दिनो की व्यवहार की भाषा था। कचहरियो मे उर्दू-फारसी का प्रयोग ज्यादा मात्रा मे होता था। स्कूली शिक्षा प्रारभ होने पर गणित, अग्रेजी, इतिहास आदि विषय पढने का मौका मिला। मैट्रिक परीक्षा उत्तीर्ण करने के बाद काशी के सुप्रसिद्ध क्वीस कालेज मे प्रवेश लिया और इसी कालेज से इटरमीजिएट तथा बी० ए० परीक्षा १८६१ ई० म उत्तीर्ण की। उन दिनो बी० ए० तक पढ़ने वाले छात्र कम ही होते थे।

बाबू जगन्नाथदास को शैशव स ही कविता करने का शौक था, उन्होंने उद्धव-शतक के निवेदन मे लिखा है—'कविता मे रुचि लडकपन से ही थी। ४०-४५ वर्ष हुए जब मैंने दो एक कवित्त उद्धव सम्बन्धी बनाए थे। वे कई मित्रो और उस समय के कवियो को रुचिकर प्रतीत हुए। पूज्यपाद स्वर्गीय पिताजी ने भी उन पर प्रसन्नता प्रकट की। इस प्रकार प्रोत्साहित होकर मैंने उद्धव विषयक ५ ७ कवित्त और बनाए और फिर यह विचार किया कि उद्धव शतक की रचना की जाय। विद्यार्थी जीवन मे ही इन्होने उर्दू फारसी के साथ हिन्दी मे कवित्त लिखना प्रारभ कर दिया था। उर्दू शायरी म इनका उपनाम 'जकी' था। उर्दू फारसी की शायरी के लिए य अपने उस्ताद मिर्जा मुहम्मद हसन फायज के प्रति ऋणी थे और उनका स्मरण बडे सम्मान के साथ करते थे। इनकी मान्यता थी कि शायरी मे इसलाह बहुत जरूरी है। और इसलाह के लिए काबिल उस्ताद का होना अनिवार्य है। बिना उस्ताद की इसलाह के शायरी लूली लगडी रह जाती है। यह बात उन्होंने सन् १६२२ के बीसवें अखिल भारत वर्षीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन के सभापति भाषण म कही थी। 'उर्दू शायरी अच्छी होने का मुख्य कारण यह है कि उर्दू शायर बहुत दिनो तक उस्तादो स इसलाह लेते रहते है। जब वे कोई कविता बनाते है तो अपने गुरु के सामने सशोधनार्थ उपस्थित करते है। और जब तक गुरु की स्वीकृति नही मिलती, तब तक वे उस कविता को मुशायरो मे नही पढ़ते।" बाबू जगन्नाथदास ने जब फारसी शायरी छोड कर हिन्दी मे कविता लिखना शुरू किया तो स्वरचित छन्द वे अपने मित्र मथुरा निवासी श्री नवनीतलाल चतुर्वेदी को दिखाते रहे। इसके साथ ही व अपनी मित्र मडली मे भी सुनाते थे ताकि उसके गुण दोष ज्ञात हो सकें। मित्रो द्वारा सुझाये गये परिवर्तन भी वे सहर्ष स्वीकार कर लेते थे।

जीविका और नौकरी बाबू जगन्नाथदास को सम्पन्न होते हुए भी दो स्थानो पर नौकरी करनी पडी थी। यद्यपि ये दोनो स्थान राजघरानो से सम्बन्ध रखते है, फिर भी नौकरी तो नौकरी ही है। बी० ए० पास करने के बाद कुछ वर्ष तो साहित्यिक मनोविनोद म गुजार दिये किन्तु आठ-नौ वर्ष साहित्य चर्चा करने के बाद जीविका की ओर उनका ध्यान गया। पहले एटा जिले की अवागढ रियासत मे ट्रेजरी अफसर के पद पर आपकी नियुक्ति हुई। अवागढ छोटा सा एक कस्बा है। जलवायु की दृष्टि से वह बाबूजी को अनुकूल सिद्ध न हुआ। अत दो वर्ष बाद स्वयमेव त्यागपत्र देकर वहा से आ गये। काशी आने पर अयोध्या नरेश सर प्रताप नारायण सिंह ने इन्हे प्राइवेट सेक्रेटरी पद पर आमन्त्रित किया। कुछ समय बाद इनकी कार्य कुशलता से प्रसन्न हो इन्हे अपने राज्य का मुख्य सचिव बना दिया। महाराजा की मृत्यु के बाद महारानी श्रीमती जगदम्बा देवी ने इन्हे अपना निजी सचिव बनाया। सन् १९२८ तक रत्नाकर जी इसी पद पर महारानी अयोध्या के पास काम करते रहे। महाराजा की मृत्यु के बाद अयोध्या म कुछ पट्टीदारो ने रियासत पर अधिकार करने का षडयन्त्र किया जिसे रत्नाकर जी ने अपनी सूझ-बूझ से विफल कर दिया। कोर्ट म लम्बे अर्से तक रियासत के अधिकार को लेकर मुकदमा भी चला जिसमे महारानी की जीत हुई। इस षडयन्त्र मे रत्नाकर जी को बदनाम करने का भी प्रयत्न किया गया। महारानी के प्रिय पात्र होने से उन पर आक्षेप भी लगाये गये किन्तु वे झूठे साबित हुए और रत्नाकर जी निर्दोष एव निष्कलक होकर सच्चे सेवक सिद्ध हुए। उस समय के फैजाबाद के अग्रेज कमिश्नर ने रत्नाकर जी के चरित्र एव कार्य शैली की मुक्त कठ से प्रशसा की और इन्हे बहुत अच्छे प्रशसा भरे प्रमाण पत्र दिये। सन् १९२८ मे रत्नाकर जी का स्वास्थ्य गिरने लगा था और इनसे कठिन परिश्रम नही बन पडता था। अत राज्य की सेवा से त्याग-पत्र देकर काशी आ गये।

अयोध्या मे कार्य करते समय भी रत्नाकर जी की काव्य साधना निरन्तर अप्रतिहत गति से जारी थी। सन १९२० मे महारानी जगदम्बा देवी की प्रेरणा से इन्होंने 'गगावतरण' काव्य का प्रणयन किया। इसके साथ ही बिहारी सतसई पर यथा समय टीका लिखने का कार्य भी करते रहे जो १९२५ म पूरी हुई और 'बिहारी रत्नाकर' नाम से प्रकाशित हुई। ये दोनो पुस्तकें महारानी को समर्पित है।

रत्नाकर जी को अपने यौवन काल मे यात्रा और देश-देशान्तर भ्रमण का बहुत शौक था। सम्पूर्ण भारत का उन्होने भ्रमण किया था। भारत के पवित्र तीर्थ स्थलो मे से किसी एक की यात्रा वे वर्ष म एक बार अवश्य करते थे। कश्मीर, नाथद्वारा, जगन्नाथपुरी, मथुरा और हरिद्वार उनके यात्रा स्थल थे। गर्मी के दिनो मे मसूरी, नैनीताल और शिमला जाते थे। गगा के प्रति भक्ति के

कारण प्रतिवर्ष हरिद्वार जाना तो उनके लिए आवश्यक था। 'बिहारी रत्नाकर' की टीका उन्होंने कश्मीर प्रवास में पूरी की थी। पर्यटन के लिए समुद्री तटों पर पहुंच जाते थे। राजा महाराजाओं से व्यक्तिगत परिचय के कारण राजस्थान की रियासतों का भी वे प्रायः भ्रमण करते रहते थे। राजस्थान में वे राजाओं के अतिथि होकर ही जाते थे। राजस्थान की प्रायः सभी रियासतों में उनका आना-जाना था।

रत्नाकर जी वैभव-सम्पन्न घर में पैदा हुए थे। घर का रहन-सहन भी सेठों की मर्यादा के अनुसार था। बचपन से विद्याव्यसन में पड़ने वाले रत्नाकर जी पहले व्यक्ति थे। पढ़ना लिखना, कविता और शायरी का शौक रखना इस सेठ घराने के लिए नई बात थी। किन्तु इस व्यसन को किसी ने बुरा नहीं माना, प्रत्युत प्रोत्साहन देकर बढ़ाया। इनके पिता सेठ पुरुषोत्तम दास ने इनकी पहली कविता की प्रशंसा करके इन्हें कविता करने की प्रेरणा दी थी। बचपन में रत्नाकर जी को कबूतर पालने का भी शौक था। उन दिनों रईस घरानों में कबूतर, तीतर, खरगोश कुत्ता, बिल्ली आदि पक्षी और जानवर पालने का शौक रहता था। रत्नाकर जी ने कबूतरों का समीप से निरीक्षण किया था, उनके स्वभाव से वे परिचित हो गये। उसी आधार पर उन्होंने अपनी कविता में इसका वर्णन किया है।

रत्नाकर जी अग्रवाल वैश्य वंश के सेठों का वस्त्राभरण में भी अनुकरण करते थे। शेरवानी और चूड़ीदार पाजामा तो उनकी ठाट-बाट की पोशाक थी। कभी कभी सेठों की पगड़ी भी पहन लेते थे। इत्र फुलेल का उन्हें बड़ा शौक था। कपड़ों में इत्र तो सभी शौकीन लोग लगाते हैं। रत्नाकर जी बिस्तर में भी इत्र का प्रयोग करते थे। उनका वेश विन्यास, खान-पान, रहन-सहन सब सुरुचिपूर्ण था। राज दरबारों से सम्बन्ध रहने के कारण उसी प्रकार का शिष्टाचार भी उनके व्यवहार में सहज आ गया था।

विद्याव्यसनी होने के कारण साहित्य, दर्शन, पुरातत्व, अध्यात्म, पुराण आदि विषयों की पुस्तकें पढ़ने में उनका समय व्यतीत होता था। अयोध्या में रहते हुए उन्हें वहां के राजनीतिक झगड़ों और कचहरी के मामलों में लगभग पन्द्रह वर्ष तक निरन्तर फंसे रहना पड़ा जिसके कारण काव्य-सृजन वे नहीं कर सके। किन्तु स्वाध्याय में व्यवधान नहीं आया। हिन्दी के प्राचीन कवियों की कविता उनकी स्वाभाविक रुचि का विषय थी। विशेषतः रीतिकालीन देव, मतिराम, बिहारी, घनानन्द, पद्माकर, केशव आदि कवियों की सरस रचनाएं उन्हें कंठस्थ थीं। नायिकाभेद और शृंगार वर्णन में भी उनकी रुचि थी। सयोग शृंगार का बहुत सुन्दर वर्णन उनकी काव्य-कृतियों में मिलता है।

रत्नाकर जी का अयोध्या प्रवास का समय तो देश की राजनीति और समाज की स्थिति से कुछ कटा रहा, किन्तु काशी आने पर उन्होंने राजनीति विषयक

काव्य सृजन भी किया और सामाजिक तथा साहित्यिक कार्यों में भी सक्रिय रूप से भाग लेना शुरू किया। काशी नागरी प्रचारिणी सभा से तो रत्नाकर जी उसके जन्म काल से ही जुड़े थे। काशी आने पर सूरसागर के सम्पादन का काम हाथ में लिया और बाबू श्यामसुन्दर दास के साथ सभा के कार्यों में सहयोग किया। एशियाटिक सोसाइटी के भी सदस्य बने। ओरियंटल कान्फ्रेंस में भी योग दिया। 'काशी कवि समाज' की स्थापना में रत्नाकर जी अग्रणी थे और कवि-समाज की बैठकों में हमेशा उपस्थित रहते थे। स्वयं कवितापाठ और समस्यापूर्ति भी किया करते थे। रसिक मंडल, प्रयाग की स्थापना में भी इनका हाथ था। इस प्रकार साहित्यिक गतिविधियों से जुड़ कर रत्नाकर जी ने साहित्य और समाज की अच्छी सेवा की थी।

रत्नाकर जी का गृहस्थ जीवन विशेष सुखमय नहीं रहा। इनके दो विवाह हुए थे और दोनों पत्नियों का शीघ्र ही देहान्त हो गया। पहली पत्नी से दो संतान थीं। एक पुत्र और एक पुत्री। पुत्र का नाम राधेकृष्णदास था। दूसरी पत्नी से दो संतान हुईं और दोनों अकाल कवलित हो गईं और पत्नी भी स्वर्ग सिधार गई। इनके पुत्र राधेकृष्ण दास का लालन-पालन इनकी विधवा भाभी ने किया था।

रत्नाकर जी की काव्य प्रतिभा का सिक्का उस समय के विद्वानों पर पूरी तरह जम गया था। बाबू श्यामसुन्दर दास, पं० पद्मसिंह शर्मा, श्री चन्द्रधर शर्मा, गुलेरी, नाथूराम शर्मा 'शंकर' आदि साहित्य ममज्ञ इनके प्रशंसक थे। सुप्रसिद्ध अंग्रेज विद्वान् सर जार्ज ग्रियर्सन भी इनकी प्रतिभा से परिचित थे। उन्होंने लाल चन्द्रिका की टीका में इनका उल्लेख बड़े सम्मानपूर्वक किया है। बाबू देवकीनंदन खत्री के सहसम्पादकत्व में इन्होंने 'साहित्य सुधा निधि' नामक मासिक पत्र निकाला था जो विद्वत्समाज में लोकप्रिय था। समालोचनादर्श के कारण भी इन की ख्याति हिन्दी जगत में फैल गई थी।

काशी में रहते समय रत्नाकर जी का समय साहित्य-सृजन में ही व्यतीत होता था। शारीरिक दृष्टि से कोई इन्हें शिथिल या सुस्त नहीं कह सकता था किंतु भीतर-ही भीतर हृदय रोग ऐंजाइना ने इन्हें घेर लिया था। उन्हें स्वयं भी इस रोग के कारण अपने अन्तिम समय का आभास होने लगा था। सन् १९३२ के जून मास में जब हरिद्वार जाने लगे तो सूरसागर के शेष कार्य की उन्हें चिन्ता थी। श्री दुलारेलाल भार्गव से उन्होंने इस कार्य के विषय में अपनी चिंता प्रकट भी की थी। रत्नाकर जी गंगा के परम भक्त थे, इसलिए हरिद्वार उनका प्रिय स्थान था। जून मास में हरिद्वार पहुंचे गये और वहीं २१ जून सन् १९३२ ई० को इनका देहावसान हुआ।

रत्नाकरजी के निधन से व्रजभाषा काव्य का अंतिम सर्वश्रेष्ठ कवि उठ गया उनके बाद किसी अन्य कवि ने इतना उत्कृष्ट काव्य व्रजभाषा में नहीं लिखा और सर्वतोभावेन व्रजभाषा को समर्पित कोई दूसरा कवि उनके बाद पैदा ही नहीं हुआ।

○ ○

२

आधुनिक ब्रजभाषा काव्य और कविवर रत्नाकर

हिन्दी साहित्य के इतिहास मे भक्ति तथा रीतिकालीन काव्य को प्राचीन कविता के नाम से अभिहित किया जाता है। इस कविता का अस्सी प्रतिशत भाग ब्रजभाषा मे लिखा गया है। शेष बीस प्रतिशत मे अवधी, राजस्थानी, बुन्देली, भोजपुरी आदि भाषाओ मे लिखा साहित्य है। गोस्वामी तुलसीदास रचित 'राम चरित मानस' जायसी रचित 'पद्मावत', सूफी कवियो के प्रेमाख्यानक काव्य अवधी भाषा के कीर्ति स्तम्भ हैं किन्तु इनकी सख्या सीमित है। राजस्थानी मे इस काल मे श्रेष्ठ काव्य लिखे गये किन्तु उनको भी साहित्य मे गौण स्थान प्राप्त हुआ। ब्रजभाषा मे काव्य सृजन करने वाले कवियो की सख्या अपरिमेय है। स्वय तुलसी जैसे महाकवि ने दस ग्रन्थ ब्रजभाषा म लिखकर ब्रजभाषा को स्थापित काव्य-भाषा स्वीकार किया है। मीराबाई की पदावली की भाषा राजस्थानी होने पर भी वह ब्रजी की छाप से बच नही सकी है। प्राय प्रत्यक पद का अधिकाश ब्रज भाषा के माधुय से परिपूर्ण है।

रीतिकालीन कवियो ने प्रान्तीय भाषाओ का प्रयोग नही किया। उन्हें परिमार्जित, प्राजल ब्रजभाषा भक्त कवियो द्वारा विरासत मे सुलभ हो गई थी। अत सभी श्रेष्ठ कवियो ने ब्रजभाषा को स्वीकार कर काव्य रचना की। देव, मतिराम बिहारी, पदमाकर, घनानन्द आदि कवियो ने ब्रजभाषा के लालित्य और माधुय को जिस मनोहारी रूप म पल्लवित किया, वह ब्रजभाषा को सावभौम काव्य भाषा बनाने मे सहायक हुआ। ब्रजभाषा काव्य की यह अविच्छिन्न परम्परा भारतेन्दु युग तक बनी रही। भारतेन्दु-युग को इतिहास लेखक आधुनिक-युग और गद्य-युग की सज्ञा देते हैं किन्तु इस युग के प्रमुख कवियो की काव्य भाषा परम्परा प्राप्त ब्रजभाषा ही है। भावबोध म अवश्य परिवतन आया, किन्तु अभिव्यजना के लिए ब्रजभाषा को ही भारतेन्दु युगीन कवियो ने स्वीकार किया है। भारतेन्दु के समय म ब्रजभाषा के विषय म कोई विवाद खडा नही हुआ। प्राय सभी कवि अपनी-अपनी शली मे ब्रजभाषा मे कविता लिखते रहे। भारतेन्दु स्वय ब्रजभाषा

के श्रेष्ठ कवि थे। कविता के अतिरिक्त अन्य साहित्य विधाओ मे उन्होंने खडी बोली को स्थान दिया है।

द्विवेदी युग के प्रारभ मे ब्रजभाषा को लेकर विद्वानो मे कुछ विवाद का सूत्रपात हुआ। जिस प्रकार गद्य मे खडी बोली का चलन हो गया था, उसी प्रकार कुछ लेखक कविता मे भी खडी बोली को स्थान देने का आग्रह करने लगे थे। उस समय बिहार और पूर्वी उत्तर प्रदेश मे 'खडी बोली बनाम ब्रजभाषा' का आदोलन शुरू हो गया था। ब्रजभाषा के पक्षपाती भारतेन्दु युगीन कुछ कवि थे। उनका काव्य-सस्कार ब्रजभाषा का था अत वे खडी बोली को कविता के लिए अनुपयुक्त मानते थे। उनके मत मे खडी बोली मे ललित एव मधुर भावो की अभिव्यक्ति के लिए लोच लचक का अभाव है। श्रुति पेशलता का अभाव है। ब्रजभाषा के स्वीकृत छदो मे खडी बोली ढल नही सकती। अत कविता के लिए ब्रजभाषा का अस्तित्व अनिवार्य है। भक्ति और रीति काव्य की जैसी समृद्ध परम्परा ब्रजभाषा के पास है, वैसी खडी बोली मे सम्भव ही नही है। इस प्रकार के तर्कों के आधार पर ब्रजभाषा के पक्षधर अपनी स्थापना का प्रबल रूप से समर्थन करने मे लगे हुए थे।

दूसरी ओर खडी बोली को साहित्य की समस्त विधाओ मे समान रूप से प्रयोग मे लाने वाले विद्वान ब्रजभाषा से अपना सम्बन्ध विच्छेद कर खडी बोली के पक्ष मे व्यावहारिक दृष्टि से युक्ति और तर्क प्रस्तुत करने मे तत्पर थे। खडी बोली गद्य के क्षेत्र मे तो स्थापित हो चुकी थी और उसका प्रभाव भी निरतर बढता जा रहा था। अत द्विवेदी युगीन कवियो का ध्यान भी ब्रजभाषा से हटकर खडी बोली की ओर जाने लगा। प० श्रीधर पाठक, अयोध्यासिंह उपाध्याय, नाथूराम शर्मा 'शकर', गया प्रसाद शुक्ल 'सनेही', रामचन्द्र शुक्ल, भगवानदीन आदि कवियो ने ब्रजभाषा छोडकर खडी बोली को काव्य का माध्यम बना लिया था। खडी बोली के निरन्तर बढते प्रयोग और प्रभाव से जो दो सुकवि अछूते रहे, उनमे श्री जगन्नाथदास रत्नाकर और प० सत्यनारायण कविरत्न का नाम उल्लेखनीय है। यो तो और भी अनक कवि थे जो ब्रजभाषा मे कविता लिख रहे थे किन्तु उनकी स्फुट रचनाओ का साहित्य मे महत्त्वपूर्ण स्थान नही था। इन दो कवियो ने द्विवेदी युग मे ब्रजभाषा काव्य की पताका फहराने का श्रेय प्राप्त किया और ब्रजभाषा को समृद्ध बनाने मे प्रशसनीय योग दिया।

बाबू जगन्नाथदास 'रत्नाकर' ने ब्रजभाषा को किसी आग्रह या हठ से स्वीकार नही किया था। वस्तुत ब्रजभाषा उनके सस्कार की सहज भाषा थी। अपने शशव से उन्होंने ब्रजभाषा की कविता बडे चाव से पढी थी। ब्रजभाषा के श्रेष्ठ सुकवियो के सैकडो छद उन्हें कठस्थ थे। प्रेम और शृगार के कवित्त रत्नाकर जी जब सुनाने लगते तो उनका प्रवाह टूटता ही नही था। एक के बाद एक छद उनके मुख से इस प्रकार निकलता, जैसे पर्वत से झरना निकल कर बहता है। एक ही

विषय के अनेक कवियो के छन्दो की माला उनके कण्ठ मे तयार रहती थी। ब्रज-भाषा का यह प्रगाढ प्रेम और पावन संस्कार ही उन्हे ब्रजभाषा से बाधे रहा। उनके समकालीन अन्य कवि ब्रजभाषा छोडकर खडी बोली के जाल म फस गये किन्तु रत्नाकर जी अनन्य भाव स ब्रजभाषा की सवा म आजीवन तत्पर रहे।

ब्रजभाषा के साथ रत्नाकर जी के प्रेम का दूसरा कारण उनका भक्ति-साहित्य का अध्ययन और प्रेम था। भागवत, सूरसागर, रासपचाध्यायी, अष्ट छापी कवियो की वाणी और कृष्ण भक्ति सम्प्रदायो के कवियो की मनोरम रचनाए उनके अनुशीलन का विषय थी। रहीम, रसखान और मीरा के छन्द एव पद उनकी जिह्वा पर विराजते थे। रसखान के सवैये तो उनके मुख से एसे निक-लते जैसे वे रसखान के नही रत्नाकर के हो। रीतिकालीन कवियो ने ब्रज भाषा मे लालित्य, मादव, माधुय और प्राजलता का पुट दकर जो प्रवाह उत्पन्न किया था, उसे आत्मसात करन का भी रत्नाकर न भरसक प्रयास किया था। ब्रज भाषा मे लोच-लचक के साथ श्रुति कोमलता का गुण भी रत्नाकर जी को आकषक लगता था। अत उन्होने ब्रजभाषा का दामन नही छोडा। खडी बोली के प्रचार प्रसार ने जो वातावरण उस समय बनाया था, रत्नाकर जी उससे प्रभावित नही हुए। उन्होने चातक व्रत लेकर ब्रजभाषा मे साहित्य-सजन का सुख प्राप्त किया। यदि इस प्रकार का व्रत धारण करने वाले किसी दूसरे कवि का स्मरण करना हो तो वह है प० सत्यनारायण कविरत्न। कविरत्न जी को ब्रजभाषा इसलिए भी प्रिय थी कि उनकी मातभाषा ही ब्रजभाषा ही थी। ब्रज प्रदेश मे उनका जन्म हुआ था, शैशव से इसी भाषा मे बोलते और रचना करत थे। ब्रजभाषा के मे दोनो महा कवि अग्रेजी शिक्षा प्राप्त, बी० ए० उपाधिधारी थे। दोनो कवियो को अग्रेजी, सस्कृत और फारसी का अच्छा ज्ञान था किन्तु इनकी काव्यनिष्ठा ब्रजभाषा मे ही थी। रत्नाकर जी की मातृभाषा तो बनारसी भोजपुरी थी किन्तु अध्ययन और अभ्यास से अर्जित भाषा, ब्रजभाषा थी। यही दोनो कवियो मे अन्तर है।

ब्रजभाषा की समृद्ध परम्परा को स्वीकार करन वाले द्विवेदी युगीन कवियो मे सत्यनारायण कविरत्न के साथ प० वियोगी हरि, हरदयालु सिंह, रमाशकर शुक्ल 'रसाल' रामचन्द्र शुक्ल दुलारेलाल भागव रामेश्वर करुण आदि का नाम आता है किन्तु रत्नाकर इन सब मे श्रेष्ठ और मूधन्य है।

'ब्रजभाषा बनाम खडी बोली' न जब आन्दोलन का रूप धारण कर लिया और पक्षो से अपने समथन मे तक प्रमाण प्रस्तुत होने लगे तब श्री जगन्नाथदास रत्नाकर ने अपन पत्र 'समालोचनादश' म इस विवाद पर छन्दोबद्ध टिप्पणी की थी। उन्होने ब्रजभाषा का पक्ष तो नही छोडा था, किन्तु खडी बोली अतुकान्त छन्दविहीन कविता से भी उनका परिचय हो गया था—

जात खडी बोली पै कोऊ भयो दिवानौ।
कोउ तुकात बिन पद्य लिखन मे है अरझानौ॥
अनुप्रास प्रतिबध कठिन जिनकै उर माही।
त्यागि पद्य-प्रतिबधहु लिखत गद्य क्यो नाही॥

जो लोग अनुप्रास, छन्द, यति गति को छोडकर कविता लिखने मे लगे थे, उन्हें रत्नाकर ने यही परामश दिया था कि वे गद्य को स्वीकार करें। कविता के क्षेत्र मे धाधली पैदा न करें। उन्हे उस समय की खडी बोली की कविता 'अग-भग छवि छीन' दिखाई देती थी। यह सब होते हुए भी खडी बोली के सतत बढते हुए प्रयोग और प्रभाव से रत्नाकर जी अपरिचित नही थे। उन्होने कानपुर मे कवि-सम्मेलन के सभापति पद से जो भाषण दिया था, उसमे इस तथ्य का समावेश है। उन्होने खडी बोली के बढते हुए प्रयोग को देखकर कहा था—'ब्रजभाषा कविता का ह्रास होने पर खडी बोली म कविता की जाने की आवश्यकता समझकर कुछ लोगो ने उसमे भी अपनी प्रतिभा का परिचय देना आरम्भ किया। भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र जी ने भी कुछ छन्द उक्त भाषा मे लावनी के नाम से लिखे थे। उनके ऐसे छन्द 'फूलो का गुच्छा' तथा 'विनय प्रेम पचासा' ग्रन्थो मे पाये जाते है। × × × खेद का विषय है कि खडी बोली में कविता करने वाले नवीन उत्साहियो ने ब्रजभाषा म कविता करना ही नही, प्रत्युत उसके ग्रन्थो का पठन-पाठन भी त्याग दिया। फल यह हुआ कि व साहित्यिक सामग्री से, जो उसमे प्राचीन कवियो न बडे श्रम से सचित की थी, वचित हो गये। बीसवें अखिल भारतवर्षीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन के सभापति पद से भाषण करते हुए उन्होन इस बात को पुन उठाया था। उन्होंने अपना ब्रजभाषा प्रेम प्रकट करत हुए कहा था—'इस बात को स्पष्ट शब्दो मे कहते हुए मुझे किंचित भी सकोच नही होता कि मैं ब्रजभाषा का पूण पक्षपाती और समथक हू। उसकी कविता मे मुझे जो आनन्द मिलता है, वह अकथनीय है और बहुत ढूढा पर भी वह मुझे दूसरी जगह नही मिलता। पर इसका यह तात्पय नही कि मैं खडी बोली की कविता का विरोधी हू। × × × मुझे यह स्पष्ट दिखाई पड रहा है कि इस कविता का सौभाग्योदय होने वाला है। × × × मैं ब्रजभाषा के सम्बन्ध म कुछ कहना चाहता हू (खडी बोली की) जहा एक ओर सवतोमुखी उन्नति हो रही है, वहाँ दूसरी ओर हमारी ब्रजभाषा का क्षेत्र सकुचित होता जा रहा है। जो भाषा एक समय हिन्दी काव्य का प्रधान क्रीडाक्षेत्र और सवमान्य थी, उसी की ओर आज हमारे नवयुवक कविगण उदासीन हो रहे हैं। जो अनक उच्चकोटि के ग्रन्थ रत्नो की जननी थी, उसी के गौरव को नष्ट करने का आज जहा-तहा प्रयत्न देख पडता है। × × × जब खडी बोली के पक्षपाती कवियो को अपने प्राचीन साहित्य अर्थात ब्रजभाषा की

उपेक्षा करते, उसे हीन-दीन तथा सवथा घृणित बनाते हुए देखता हूं तो मुझे आन्तरिक व्यथा होती है। इस सैंकडो वष पुराने साहित्य के प्रति यह व्यवहार न होना चाहिए। जिस साहित्य ने आपको जीवन दान दिया है, आपको शक्ति सम्पन्न किया है, विषम परिस्थितियो मे आपकी सहायता की है और सकट के समय आपका उद्धार किया है, उसके प्रति आपको कृतज्ञ होना चाहिए। आज प्राचीन साहित्य मे ऐसे ऐसे ग्रन्थ विद्यमान हैं, जो केवल हिन्दी साहित्य के ही नही प्रत्युत वाङ्मय मात्र के भूषण कहे जा सकते है। महात्मा सूरदास और गोस्वामी तुलसीदास प्रभति कवियो को अपनाकर कोई भी देश अपने को धन्य मान सकता है। यदि इन महात्माओं की कृतिया हिन्दी साहित्य से निकाल दी जाय तो फिर उसमे गौरव की वस्तु ही क्या रह जाती है। अन्य देशा मे भी प्राचीन साहित्य का अर्वाचीन साहित्य से कही अधिक आदर होता है। चौसर और फिरदौसी अवज्ञा नही, पूजा के पात्र समझे जाते हैं।"

उपयुक्त उद्धरणो से यह स्पष्ट हो जाता है कि रत्नाकर जी ब्रजभापा के प्रबल समथक थे। उनकी दृष्टि मे कविता के लिए खडी बोली की अपेक्षा ब्रजभापा ही उपयुक्त भापा है। लेकिन ज्यो ज्यो खडी बोली का प्रचलन बढता गया त्यो-त्यो रत्नाकर जी का कठोर रुख कोमल होता गया और उन्होंने खडी बोली का विरोध करना बन्द कर दिया।

खडी बोली के सम्बन्ध मे उन्होने अपने विचार चतुथ ओरिण्टल कान्फ्रेंस के हिन्दी विभाग क सभापति पद से दिये भापण मे व्यक्त किये है। उनके मत मे खडी बोली को सस्कृत के क्लिष्ट तत्सम प्रधान शब्दो मे भरना उचित नही है। भापा म व्यजक शब्दो को मुख्य स्थान मिलना चाहिए। यदि तत्सम प्रधान क्लिष्ट पदावली को न रोका गया तो भविष्य मे हिन्दी जनसाधारण के लिए दुरूह तथा सस्कृत प्राकृत के समान मृत भापा हो जाएगी, बोलचाल की भापा को किसी नवीन स्वरूप म बदल देना पडेगा। इस परामश के साथ ही उन्होने अरबी फारसी के कठिन शब्दो के प्रयोग को भापा के लिए अनुचित ठहराया है। उनके मत मे बोलचाल की प्रान्तीय भापाओ के शब्दो का प्रयोग भापा को व्यावहारिक एव प्रवाहपूण बनाने के लिए अनिवाय है। खडी बोली के सम्बन्ध मे उनका कहना था कि यह प्रयोग की परिमार्जित भापा बन गई है, अत इसका नाम भी सुन्दर होना चाहिए। उन्होंने इसका 'भारती भापा' नाम रखने का सुझाव दिया था।

कविवर रत्नाकर ने ब्रजभापा के अतिरिक्त खडी बोली से किसी रूप म कविता नही लिखी। ब्रजभापा की मधुरता सुकुमारता पेशलता, लावण्य और लालित्य के साथ वे आजीवन बधे रहे। इसका परिणाम यह हुआ कि उनके सभी काव्य ब्रजभापा के उत्कृष्टतम आदश काव्य बन सके।

रत्नाकर जी की काव्य कृतियां—रत्नाकर जी की पाच काव्य कृतिया तो

अति प्रसिद्ध हैं, उनमे हिंडोला, हरिश्चन्द्र, शृंगार लहरी—प्रकीर्ण पद्यावली, गंगावतरण और उद्धव-शतक। इनके अतिरिक्त समालोचनादर्श एक अनूदित रचना है जो रोला छंद में है। कलकाशी उनका एक वर्णनात्मक प्रबंध काव्य है, जिसे वे पूरा नहीं कर सके। इसमे काशी नगरी का वर्णन है। इस काव्य का अधिक प्रचार नहीं हो सका। काशी नगरी की तत्कालीन स्थिति को समझने के लिए यह उत्तम कोटि की रचना है। रत्नाष्टक तथा वीराष्टक नाम से इनके तीस अष्टकों का संकलन है। वीराष्टक में १४ वीर नर नारियों का रत्नाकर जी ने स्मरण किया है।

यदि इन समस्त काव्य कृतियों को रत्नाकर ग्रंथावली के रूप में प्रकाशित कर दिया जाता तो उनके सभी छोटे बड़े ग्रंथों से पाठक का परिचय हो जाता। गंगावतरण, हरिश्चन्द्र और उद्धव-शतक से तो ब्रजभाषा प्रेमी रसिकवृन्द परिचित हैं। शेष रचनाएं अब उपलब्ध भी नहीं होतीं। अतः उनके काव्य सौष्ठव से पाठक अपरिचित ही हैं।

उद्धव शतक की रचना से रत्नाकर जी को जो सुयश मिला, वह इस बात का प्रमाण है कि यह रचना भाव, भाषा, शैली, अलंकार, बिम्ब, प्रतीक आदि समस्त गुणों से परिपूर्ण होने के कारण बीसवीं शती की सर्वश्रेष्ठ ब्रजभाषा काव्य-कृति है और रत्नाकर आधुनिक युग के प्रतिभासम्पन्न सिद्ध कवि हैं। उनकी तुलना ब्रजभाषा क्षेत्र में किसी आधुनिक कवि के साथ नहीं हो सकती। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि यदि रत्नाकर जी केवल एक ही कृति 'उद्धव शतक' लिखते तो भी वे हिन्दी साहित्य में अमर रहते और उनकी ख्याति आधुनिक ब्रजभाषा के सर्वोत्तम कवि के रूप में सदैव बनी रहती।

३

भ्रमरगीत परम्परा और उद्धव-शतक

उद्धव-शतक, रत्नाकर जी की सर्जक प्रतिभा का अप्रतिम निदर्शन है। इस काव्य को विद्वानो ने भागवत पुराण म वर्णित भ्रमर गीत परम्परा का तथा सूर-दास एव नन्ददास द्वारा रचित भ्रमरगीत शैली का आधुनिक सस्करण कहा है। वस्तुत यह एक ऐसा सदर्भ है जिसका मूल बीज तो भागवत के दशम स्कद के छियालीस तथा सैतालीसवें अध्याय मे उपलब्ध है किन्तु उसका पल्लवन भक्त कवियो ने अपनी प्रतिभा द्वारा किया है। भागवत म यह प्रसग इस प्रकार वर्णित है

भ्रमरगीत का मूल स्रोत—श्रीकृष्ण को अक्रूर मथुरा ले गये थे। कृष्ण के माता पिता और गोपिया श्रीकृष्ण को मथुरा भेजने को तैयार नही थी किन्तु अक्रूर के विनम्र निवेदन और विश्वास भरे वचनो से आश्वस्त हो उन्होने मथुरा जाने की स्वीकृति दे दी। श्रीकृष्ण मथुरा मे रह तो रहे थे किन्तु उन्ह ब्रज की याद व्यथित करती थी। उन्होने एक दिन अपन प्रिय सखा और सचिव वृहस्पति शिष्य उद्धव को बुलाकर कहा कि हे उद्धव ! तुम ब्रज को जाओ और मेरे माता पिता तथा विरह विधुरा गोपियो को मेरा सदेह सुनाकर सांत्वना दो। गोपियो का चित्त सदा मुझमे लगा रहता है। मैं उनका प्राण हू। मेरे लिए उन्होंने सवस्व परित्याग कर दिया है। मुझ प्रियतम के दूर चले आने से वे अत्यन्त विरह व्यथित है और मेरे वापस गोकुल मे आन के सदेश की आशा म अपने प्राण धारण किए हुए है—

> मयि ता प्रेयसा प्रेष्टे दूरस्थे गोकुलस्त्रिय ।
> स्मरन्त्योङ्ग विमुह्यन्ति विरहोत्कठ विह्वला ।।
> धारयन्त्यति कृच्छ्रेण प्राय प्राणा कथ चन ।
> प्रत्यागमनसन्देशवल्लभ्यो मे मदात्मिका ।।
>
> भागवत पुराण—दशम स्कध ४६ अ०

कृष्ण का सदेश लेकर उद्धव रथ पर बैठकर सायकाल गोकुल पहुच गये। वहा पहुचकर पहले नन्द-यशोदा से कुशल क्षेम पूछा। प्रातःकाल होने पर गोपिया

निद्रा त्याग कर उठी और घर की देहली पर पूजा करके दधि मथन करती हुई अपने प्रिय कृष्ण की लीलाओं का गान करने लगी। प्रात काल सूर्य का प्रकाश फैलने पर नन्द के द्वार पर एक रथ खड़ा देखकर आपस में पूछने लगी—यह रथ किसका है? कहीं अक्रूर तो नहीं आया है जो हमारे प्रियतम कृष्ण को मथुरा ले गया था? क्या अब हमें लेने आया है और हमें ले जाकर हमारे मांस से अपने मृत स्वामी कंस का और्ध्व दैहिक कर्म करेगा? गोपियां जब आपस में यह तर्क वितर्क कर ही रही थीं कि उद्धव अपना रथ लेकर उनके पास पहुंच गये। उद्धव श्रीकृष्ण के समान पीताम्बर धारण किये हुए थे। कंठ में वैसी ही माला पहनी थी। गोपियों ने उद्धव से उलाहना भरी भाषा में कहा, "हम जानते हैं तुम कृष्ण का संदेश किसके लिए लाये हो। अवश्य कृष्ण ने अपने माता पिता का स्मरण किया होगा और तुम्हारे हाथ संदेश भेजा होगा। सभी अपने प्रिय जनों को याद करते हैं। हमको कौन याद करने लगा? गोपियां ने उद्धव से कहा—पुरुषों का स्त्रियों के साथ वैसा ही स्वार्थपूर्ण लगाव होता है, जैसा भ्रमरों का पुष्पों के साथ।"

> अन्येष्वर्थकृता मैत्री यावदर्थ विडम्बनम्।
> पुम्भि स्त्रीषुकृता यद्वत्सुमन स्विव षट्पदैं ॥
>
> भागवत, दशमस्कन्ध, ४७ ६

गोपियां उद्धव की बात सुनने को तैयार नहीं हैं। उद्धव कृष्ण की प्रशंसा करते हैं। कृष्ण के प्रेम को सच्चा बताते हैं किन्तु विरह विधुरा गोपियां सुनने को तैयार नहीं हैं। उद्धव से स्पष्ट कहती हैं—हे भ्रमर! तू कृष्ण की यशोगाथा सुना कर हमारी चापलूसी न कर। ये सब बातें तो कृष्ण की मथुरावासी नयी प्रेयसियों को ही सुना। भागवत पुराण में यह संदर्भ बहुत विस्तार से बड़ी ही भावुकतापूर्ण शैली में लिखा गया है। इसे पढ़कर गोपियों की विरह व्यथा सजीव सी प्रतीत होने लगती है।

भागवत पुराण में गोपी-उद्धव संवाद को तर्क-वितर्क या कुतर्क की तरह प्रस्तुत नहीं किया गया है। गोपियां अपना सच्चा प्रेम प्रकट करते हुए कृष्ण के प्रति उपालंभ ही देती हैं, उद्धव के ज्ञान का उपहास नहीं करतीं। उद्धव भी ज्ञान का, योग और ध्यान का गूढ़ उपदेश गोपियों को नहीं देते। गोपियां तो इतना ही कहती हैं कि हम सब अपने प्रिय कृष्ण के विरहानल में जल रही हैं। क्या वे कभी आकर हमें जीवन-दान देंगे? यहां के पर्वत, नदी, वन, गाएं, वंशी की ध्वनि बार-बार हमें श्यामसुन्दर का स्मरण करा रही हैं। उनकी सुललित गति, उदार स्मित विचित्र लीला बांकी चितवन और मधुरवाणी ने हमारा चित्त चुरा लिया है। हम उन्हें भूलें तो कैसे भूलें।

उद्धव ने विरह विदग्धा गोपियों को शान्त भाव से कृष्ण का संदेश सुनाया। गोपियां आश्वस्त हुई और उन्होंने उद्धव का आदर सत्कार किया। उद्धव भी गोपियों के इस श्रीकृष्ण प्रेम को देखकर अपना स्वरूप भूल गये। उनका मन द्रवित हो उठा और उन्हें लगा कि विश्व के देहधारियों में गोपियां ही सर्वश्रेष्ठ हैं क्योंकि इनका चित्त सर्वात्मना कृष्ण में आसक्त है। उद्धव के मुख से बरबस ये शब्द निकल पड़े—अहा! क्या ही अच्छा हो यदि मैं वृन्दावन में इन व्रजांगनाओं की चरण रज का सेवन करने वाली कोई लता, झाड़ी या वनस्पति बन जाऊं। नन्द व्रज की इन गोपांगनाओं की चरण रेणु को मैं पुनः-पुनः प्रणाम करता हूं। इस प्रकार प्रेमाभक्ति के रंग में रंगकर उद्धव मथुरा वापस आए और व्रजांगनाओं की प्रगाढ़ प्रेमाभक्ति का उन्होंने श्रीकृष्ण के सम्मुख वर्णन किया।

भागवत का यह संदर्भ ही भ्रमरगीत काव्य का स्रोत है। इसी में सहार मध्य कालीन भक्त कवियों ने सगुण निर्गुण का विवाद, ज्ञान मार्ग और भक्ति मार्ग का विवाद खड़ा कर भ्रमरगीत काव्य का स्वेच्छापूर्वक प्रणयन किया है। भागवत में वाद विवाद का प्रश्न नहीं है। भक्ति और ज्ञान का भी सीधा सम्बन्ध नहीं है। गोपियों की ओर से शुद्ध प्रगाढ़ प्रेमभक्ति तथा श्रीकृष्ण के प्रति सर्वात्मना समर्पण मात्र है। इस प्रेमाभक्ति में ही उद्धव भी डूब जाते हैं। भागवत पुराण यही सिद्धांत पक्ष दिखाता है। प्रतिपक्ष या विलोम की बात वहां नहीं है।

भ्रमरगीत में भ्रमर का स्थान—उद्धव के गोकुल आने पर गोपियों को श्रीकृष्ण की प्रेम लीलाओं का सहसा स्मरण हो आया और वे प्रेम विभोर हो उठीं। उसी समय एक भ्रमर उड़ता हुआ एक गोपी के चरणों के समीप आकर गुनगुनाने लगा। उस गोपी ने श्याम वर्ण के भ्रमर को देखकर ज्ञान विमूढ़ होकर समझा कि यह भ्रमर नहीं, घनश्याम श्रीकृष्ण का दूत है जो उस मानिनी गोपी को मनाने और सान्त्वना देने आया है। गोपी विदग्धा थी। अपने प्रेमी कृष्ण के वियोग में वह मानवती भी थी अतः उसने उस भ्रमर के व्याज से ही उद्धव से अपनी उपालम्भपूर्ण वाणी में बात कहना शुरू कर दिया। भ्रमर फूलों पर मंडराता है गाता है। एक फूल से दूसरे फूल पर जा बैठता है। यह समस्त क्रिया-व्यापार ऐसी प्रेमी का है जो अनन्य भाव से प्रेम नहीं करता। इसलिए भ्रमर को उपालम्भ के रूप में चुनना संगत लगता है। भ्रमर तो व्याज मात्र है। उसके बहाने से गोपियां उद्धव से मनमानी बात कह लेती हैं।

उद्धव को व्रज भेजने का कारण—श्रीकृष्ण ने उद्धव को व्रज में क्यों भेजा था, यह बात भागवत पुराण के संदर्भ में स्पष्ट की जा चुकी है किन्तु हिन्दी के भक्त कवियों ने तथा रत्नाकर जी ने उद्धव को व्रज भेजने का कारण श्रीकृष्ण के मन में व्रज की स्मृति का उदय होना ठहराया है। स्नेह को प्रदीप्त करने में स्मृति का बड़ा हाथ रहता है। विरह के क्षणों में सबसे अधिक पीड़ा पहुंचाने वाला भाव

स्मृति ही है। उपाध्याय जी ने प्रियप्रवास में लिखा है—"जब विरह विधाता ने रचा विश्व मे था, तब स्मृति रचने मे कौन सी चातुरी थी।" स्मृति से प्रेमी विह्वल हो उठता है। प्रेमी के मन मे गहरी बेचैनी पैदा होती है और वह अपने प्रिय के पास जाने को आतुर हो उठता है। यदि पास पहुचना सभव नही हुआ तो सदेश भेजता है। भागवत पुराण मे उद्धव सदेश लेकर जाते हैं। उद्धव शतक मे यह स्मृति प्रसग बडे रोचक ढग से प्रस्तुत किया गया है—

'एक दिन यमुना मे स्नान करते समय श्रीकृष्ण ने लहरो के बीच बहते हुए एक कमल पुष्प को देखा जिसका नीचे-ऊपर का भाग अधिक मुरझाया हुआ था। कृष्ण ने उमग मे भरकर उस कमल को पकड लिया और सूघने की अभिलाषा से नाक से लगाया। ज्यो ही उसे नाक के समीप ले गये, त्यो ही चक्कर खाकर, हाय शब्द का उच्चारण कर, अचेत हो गये। उनके पैर उखड गये और मुख पर बेचैनी छा गई। उद्धव उन्हे बडी कठिनाई से तट तक ला सके तभी एक तोते ने राधा' शब्द का उच्चारण किया (इस शब्द को सुनते ही उन्हे व्रज की सुधि आ गई)। स्मृति का कारण राधा नाम श्रवण ठहराया है। इस स्मृति जन्य वेदना से कृष्ण व्याकुल हो गये और उन्होने उद्धव को व्रज भेजने का निश्चय किया।

भ्रमर की दूत रूप मे स्वीकृति—भ्रमर की कल्पना मे कई कारण बताये जाते हैं। भ्रमर को स्वार्थी, लोलुप, रसिक वृत्ति का प्रतीक ठहराया जाता है। प्रेम की निष्ठा भ्रमर मे नही होती, वह अनन्य भाव से किसी पुष्प से प्रेम नही करता। कली-कली का रस लेता भ्रमर रूप और गुण मे गोपियों को कृष्ण सदृश प्रतीत होता है। अत श्रीकृष्ण के सदेश वाहक उद्धव को भ्रमर के समान रूप, गुण, शील का मानकर गोपिया उपालभ देती हैं। साहित्य मे कुछ काव्य रूढिया बन जाती हैं। सदेश भेजने के लिए जड और चेतन नाना प्रकार के कवि-समय प्रसिद्ध हैं। मेघदूत, पवनदूत, कोकिल दूत, हसदूत। मेघ को दूत बनाकर सदेश भेजने का काम तो कालिदास ने भी लिया है। नैषधचरित मे हस को सदेशवाहक बनाया गया है, जायसी ने तोते को सदेशवाहक बनाया है। सूरदास नन्ददास आदि कवियो ने भ्रमर को इस काम के लिए चुना है।

भ्रमरगीत की एक विशिष्ट विधा ही बन गई है। इसे कवि समय मे रूढि के रूप मे स्वीकार कर लिया है। मुख्यत उपालभ हास्य, व्यग्य, कटाक्ष आदि के सदभ मे भ्रमर का प्रयोग कवियो ने किया है। जो बात कवि प्रत्यक्षत स्वय नही कहना चाहता, वह भ्रमर के माध्यम से कह देता है। सूरदास और नन्ददास ने इस शैली का भरपूर प्रयोग किया है। दूत द्वारा सदेश और पत्र प्रेषण का भ्रमर-गीत काव्य मे प्रयोग होता है। भागवत मे पत्र प्रेषण का वणन नहीं है। वहा उद्धव मौखिक रूप से ही सदेश देते हैं। पाती संदेश सूरदास की मौलिक कल्पना है जिसे परवर्ती कवियो न स्वीकार किया है। उद्धव-शतक की गोपिया तो पत्र

को प्यार करती हैं और उद्धव से पूछती हैं कि हमारे प्यारे श्रीकृष्ण ने हमारे लिए क्या लिखा है, पढ़कर बताओ।

सूरदास ने अपने भ्रमरगीत म भ्रमर प्रवेश बडे नाटकीय ढग म किया है। ज्यो ही भ्रमर आया, त्यो ही गोपिया उसके आने का कारण पूछने लगी। व्यग्र हो उठीं, कहने लगी—हे भ्रमर क्या तुम्हें कुब्जा ने यहा भेजा है या श्यामसुन्दर का सदेश लेकर आया है—

> इहि अतर मधुकर इक आयौ।
> निज स्वभाव अनुसार निकट ह्वै, सुदर शब्द सुनायौ।
> पूछन लागी ताहि गोपिका, कुबिजा तोहि पठायौ।
> कीधौ सूर स्याम सुदर को हमे सदेसौ लायौ।

प्राय सभी भ्रमरगीतो म मुख्यत चार उल्लेखनीय पात्र हैं जिन्हे व्याख्याकार प्रतीक रूप मे भी ग्रहण करते हैं। श्रीकृष्ण, गोपिया, उद्धव और भ्रमर। इनके अतिरिक्त व्यग्य कटाक्ष के लिए कुब्जा का भी वणन यत्र तत्र मिल जाता है। कृष्ण सगुण ब्रह्म के प्रतीक हैं। गोपिया प्रेमाभक्ति की प्रतीक हैं। उद्धव ज्ञान या निगुण भक्ति के प्रतीक है और भ्रमर उद्धव के मन का प्रतीक है तथा कृष्ण की रस-लम्पटता का भी। कुब्जा प्रेमाभक्ति के माग का व्यवधान या अविद्या है जो तमोगुण के प्रतीक रूप म ग्रहण की जाती है।

उद्धव शतक और भागवत पुराण मे अतर—उद्धव शतक मे श्रीकृष्ण, उद्धव और गोपियो का ही मुख्यत वणन है। उद्धव श्रीकृष्ण के प्रिय सखा और सचिव थे। भागवत मे उद्धव को ज्ञान या निगुण माग का प्रतीक या उपदेष्टा नहीं माना गया है। सूरदास ने उद्धव को ज्ञानी, योगी, निगुणमार्गी बताकर प्रतीक बना दिया है। रत्नाकर जी ने इसी रूप को ज्यो का त्या स्वीकार कर लिया है। भक्त कवियो ने उद्धव को ज्ञान के अहकार मे निमज्जित अभिमानी व्यक्ति के रूप म चित्रित किया है और यह दिखाया है कि उद्धव श्रीकृष्ण के स्वरूप को न समझकर दर्पोद्धत रहते हैं। सगुण भक्ति का महत्व और गोपिया रसमयी प्रेमा भक्ति उनकी पकड से बाहर है। अत श्रीकृष्ण उन्हे गोपियो के पास भेजते हैं और निगुण भक्ति का उपदेश देने का आग्रह करते हैं। उद्धव शतक मे उनका यही काम है जिसमे वे बुरी तरह विफल होकर सगुण प्रेम भक्ति माग क महत्व को स्वीकार करते हैं। यह सारा प्रपच सूरदास और नन्ददास ने प्रेमाभक्ति के प्रचार के लिए किया था जो परवर्ती कवियो ने भी स्वीकार कर लिया। रत्नाकर जी इन्ही कवियों के पदचिह्नो पर चले और उन्होंने भी उद्धव को प्रेममार्गी भक्त बना दिया।

शतक-परम्परा—उद्धव शतक एक तरह से विरह काव्य है किन्तु विरह की तीव्रानुभूति के साथ गोपियो का उत्कट प्रेम भी इसमे पूर्ण रूप से अभिव्यक्ति हुआ है। अत इसे कुछ समीक्षक श्रृ गार काव्य ही मानते हैं। विरहानुभूति श्रृ गार रस का ही एक रूप है। गोपिया अपना प्रेम प्रकट करने मे तनिक भी सकोच नही करती, वरन नाना रूपो मे वे उद्धव के समक्ष अपने प्रगाढ कृष्ण प्रेम की व्यजना करने मे तत्पर दिखाई देती हैं।

रत्नाकर जी ने इस कृति का नाम 'उद्धव-शतक' रखा है। शतक लिखने की प्राचीन परम्परा रही है। अमरुक शतक सस्कृत का प्रसिद्ध श्रृ गार-परक मुक्तक काव्य है। इसके अनुकरण पर परवर्ती काल मे और भी शतक लिखे गये हैं। भर्तृहरि ने नीति शतक, श्रृ गार शतक, वैराग्य शतक लिखे। मयूर कवि का सूर्य शतक, बाण का चडी शतक, उत्प्रेक्षा वल्लभ का सुन्दरी शतक और विश्वेश्वर कवि का रोमावली शतक अति प्रसिद्ध है। पुरानी राजस्थानी मे जैनाचार्यों के शतक उपलब्ध हैं। हिन्दी मे मुबारक कवि के अलक शतक और तिलक शतक मिलते हैं। शतक के साथ सप्तशती का भी प्रचार हुआ जो हिन्दी मे सतसई नाम से जाना जाता है। रत्नाकर जी ने उद्धव शतक मे ११८ छद लिखे हैं किन्तु काव्य का नाम उद्धव शतक ही रखा है। यह शतक शब्द एक प्रचलित काव्य परिपाटी का पालन मात्र है।

○○

४

उद्धव-शतक की कथा-वस्तु

'उद्धव शतक' मे कथा का विस्तृत विन्यास नही है। श्रीकृष्ण को अक्रूर मथुरा ले गए थे। गोपियां और नन्द यशोदा नही चाहते थे कि श्रीकृष्ण गोकुल छोडकर कही अन्यत्र जाए किन्तु अक्रूर का आग्रहपूर्ण अनुरोध वे लोग टाल नहीं सके और श्रीकृष्ण मथुरा चले गये। कस वध के बाद मथुरा का सारा राज-काज ही उनके ऊपर आ गया और उन्हे राज्य व्यवस्था मे दिन रात व्यस्त रहना पडा। यह व्यस्तता इतनी बढ गई कि उन्हे ब्रज की और ब्रजगोपिकाओ की सुध ही न रही। एक दिन यमुना मे स्नान करते समय एक आधा मुरझाया फूल उनके हाथ मे पड गया। यह कमल-पुष्प ऊपर और नीचे से मुरझाया हुआ था। इस मुरझाये कमल पुष्प ने अपनी विषण्ण और अवसन्न स्थिति से विरह विधुरा वियाकमानी राधा का ध्यान श्रीकृष्ण को करा दिया। कमल-पुष्प तो व्याज मात्र था, जिस प्रकार यह मुरझाया हुआ था, राधा भी कृष्ण के वियोग से ऐसी उदास और विषण्ण होगी यह विचार कृष्ण के मन म कौध गया और व मूर्छित होकर भूमि पर गिर पडे। इसी बीच एक तोता (पक्षी) राधा राधा नाम लेकर पुकार उठा और उन्हें ब्रज वीथियो और ब्रज के कुजो म राधा के साथ विचरण का स्मरण करा गया।

राधा का स्मरण आते ही उन्होने अपने परमसखा एव विश्वस्त सचिव उद्धव को बुलाया और उनसे कहा कि 'मुझे ब्रज का स्मरण बहुत पीडा पहुचा रहा है। नन्द-यशोदा का वात्सल्य, गोपियो का माधुर्यपूर्ण प्रेम, ग्वाल बालो का स्नेह-औदार्य सब एक साथ मेरे स्मृति पटल पर उभर आया है। मैं इस स्मरण से बेचन और खिन्न हो गया हू। जिन केलि कुजो मे से गोपियो के साथ आठो याम विचरण करता था व कुजवन अब मेरे नेत्रो म घूम रहे हैं। गोकुल की नवेली गोपियो का गोरस लेकर जाना गाना, बजाना, नाचना, मेरा बासुरी बजाना, ब्रज महल का यह समस्त सुख-सम्पत्ति साज आज किसी प्रकार भी भुलाये नही भूलता।' श्रीकृष्ण ने अपनी मानसिक व्याकुलता और विरह-वेदना उद्धव के समक्ष बड विस्तार से प्रस्तुत कर दी।

उद्धव ने श्रीकृष्ण की इस व्याकुल मन स्थिति को देखकर पहले तो सोचा कि इन्हें समझा-बुझा कर शान्त किया जाय लेकिन जब उन्हें लगा कि श्रीकृष्ण के मानस पटल पर स्मृति का जो गहरा निशान बन गया है वह अमिट है। अत श्रीकृष्ण की बात सुनना और तदनुसार कार्य करने की श्रेयस्कर है। श्री कृष्ण ने उद्धव से कहा, हे उद्धव! तुम एक बार गोकुल जाकर मेरा सदेश गोपियो तक पहुचा दो। उसके बाद यदि कुछ और कहना चाहोगे तो मैं उसे अवश्य सुनुगा। इस समय तुम अपना ज्ञानोपदेश बद करो और सीधे गोकुल को प्रस्थान करो। उद्धव ने श्रीकृष्ण की बात न मानकर पहले अपने ज्ञान मार्ग का मर्म समझाना चाहा और कहा कि गोपियो का प्रेम मिथ्या है, क्षण भगुर है, इस ससार मे केवल ब्रह्म ही सत्य है। पचभूतात्मक जगत् मे भेद बुद्धि रखना व्यर्थ है। ब्रह्म ही समस्त चराचर जगत् मे समान भाव से व्याप्त है। अत इस भौतिक प्रपच मे नही पडना चाहिए। वेदान्त दर्शन का ज्ञान मार्ग उद्धव ने बडी प्रखर प्रतिभा और विद्वत्ता से श्रीकृष्ण को समझाया किन्तु उन्होंने उसे स्वीकार नही किया। उद्धव ने तो यहा तक कह दिया कि वे व्रजवासी किसी सुयोग की तलाश मे है, ये तुम्हे अपने कपट जाल मे फसाना चाहते हैं। गजराज के उद्धार कर्ता होकर तुम्हे गज नही बनना चाहिए। जिस प्रकार गज कपट जाल को न समझ कर जाल मे फस जाता है, वैसे ही तुम्हे ये लोग फसाना चाह रहे है। 'वारन कितेक तुम्ह, वारन कितैक करें, वारनउँवारन ह्वै वारन बनो नही।'

अपने ज्ञानी सखा उद्धव के वचन सुनकर श्रीकृष्ण का प्रेम प्रवाह शान्त नही हुआ वरन् और तीव्रगति से उनके भीतर प्रेमाग्नि तीव्र होकर प्रज्वलित हो उठी। श्रीकृष्ण ने उद्धव से कहा— मुझे शान्तिपूर्वक प्रेमाश्रु बहा लेने दो। मेरे हृदय का व्यथा भार प्रेमाश्रु बहाने से ही शान्त होगा। मेरे दग्ध अन्त करण को ये आसू शीतल जल सीकर का काम देंगे और मुझे मानसिक शान्ति प्राप्त होगी। हे उद्धव! तुम अपना ज्ञानोपदेश इस समय बन्द कर दो और कृपापूर्वक गोकुल चले जाओ। जब वहा से लौट कर वापस आओगे तब मैं तुम्हारा उपदेश ध्यानपूर्वक सुन लूगा। तुम्हारे उपदेश को मैं दाता द्वारा दिये गये दान के समान ग्रहण करूगा। गोपियो की चर्चा चलने और उनका ध्यान आते ही मेरा मन अधीर हो उठा है। जिस प्रकार पवन से उद्वेलित होकर धूल वायु मडल मे उडने लगता है, वसे ही गोपियो की चर्चा से मेरा धैर्य धूल बनकर उड गया है।' वेदना और स्मृति जन्य मनोदशा से विह्वल होकर श्रीकृष्ण का कठ अवरुद्ध हो गया। उद्धव के हाथ जो सदेश भेजना चाहते थे, वह भी स्पष्टत नही कह सके। नेत्रो से अश्रु प्रवाह हो उठा और उन्ही अश्रुओ मे कृष्ण का प्रेम सदेश भी व्यक्त हो गया। जब वेदना का अतिशय होता है, मुख से शब्द नही निकलते, आखो से अविरल अश्रु प्रवाह जारी हो जाता है।

उद्धव श्रीकृष्ण का आग्रहपूर्ण अनुरोध स्वीकार कर व्रजगमन के लिए तैयार हुए, तभी श्रीकृष्ण के मन में भी व्रज-गमन की आतुरता व्याप्त हो गई। गले में अवरोध से हिचकियां आने लगी, रोम कूपों से स्वेद प्रवाहित हो उठा। कृष्ण के मन की कोमल भावनाएं कुछ मुख मार्ग से निकलने लगी तो कुछ नेत्र रूपी खिड़कियों से प्रकट होने लगी। कहने का तात्पर्य यह है कि श्री कृष्ण का तन मन सब विभोर हो उठा और व्रजगमन की इच्छा से पुलकित हो गया। लेकिन वे स्वयं तो जा नहीं सकते थे, अतः अपने सखा उद्धव को दूत बनाकर भेजना ही उन्हें उचित लगा। उद्धव शतक की कथा का यही आदि भाग है।

उद्धव गोकुल के लिए रथ पर बैठकर प्रस्थान करने लगे तो कृष्ण कुछ कहने को समीप आते हैं किन्तु हृदय भावावेश से भरा है। कुछ भी कहते नहीं बनता, लौटते भी नहीं बनता। बातों के आवेश में वे रथ के साथ साथ चलते रहते हैं। उन्हें याद ही नहीं रहा कि उन्हें इस समय गोकुल नहीं जाना है। वे स्वयं गोकुल नहीं जा रहे हैं। वे तो उद्धव को गोकुल भेजने के लिए आये हैं।

उद्धव बड़े उत्साह और उमंग भरे मन से गोकुल के लिए चले किन्तु ज्यों ही व्रज प्रदेश का प्राकृतिक सौंदर्य उनके सामने आया, वे अपनी ज्ञान की सम्पत्ति को भूलने लगे। गोकुल के समीप बहने वाली यमुना कछारों में उनका ज्ञान-दर्प खो गया। ज्ञान की जो पूंजी लेकर वे निकले थे वह तमाल और करील के झाड़ों में बिखर गयी। उनके मन में व्रज भूमि के प्रति रागात्मक भाव का उदय होने लगा और वे शुष्क ज्ञान मार्ग से हट कर प्रेमासक्ति की ओर अग्रसर होने लगे। ज्ञान की गूढ़ गंभीर गरिमा और योग की यम नियम से सुदृढ़ शृंखला उद्धव के भीतर समाप्त होनी प्रारम्भ हुई। उद्धव का मन रूपी मानसर जिसे ज्ञान रूपी प्रखर सूर्य की किरणों ने सुखा दिया था, उसे फिर काले बादल (घनश्याम) सजल और सुन्दर रागमय बनाने लगे। इस प्रकार की परिवर्तित मन स्थिति में उद्धव का व्रज में प्रवेश हुआ।

परम ज्ञानी उद्धव जो ब्रह्म की सत्ता में विश्वास रखते हुए सर्वत्र ब्रह्म को ही देखते थे, व्रजभूमि में पहुंचते ही प्रेम के प्रभाव से अधीर हो उठे। उनका मुख विवर्ण हो गया शरीर शिथिल हो गया, कंठ में वाणी अवरुद्ध हो गई। बोलना सम्भव न हो सका। बरसाने में कौन सी वायु बह रही थी जिस के प्रभाव से उद्धव रोमांचित होकर स्वेद से भीग गये कम्पायमान होकर मूर्छित हो गये। उद्धव की यह दशा जिस प्रभाव से हुई, वह उनके लिए अज्ञात पूर्व थी और वे इसका रहस्य स्वयं समझ नहीं सके।

उद्धव के व्रज में आगमन का समाचार सुनकर गोपियां लाख-लाख अभिलाषाओं से भर कर सब काम-काज छोड़ कर भाग खड़ी हुई। अपने मनोभाव को दबा कर उद्धव के आनन पर अपनी भाग्य लिपि को पढ़ने की इच्छा से

अपनी साँस को रोक कर, भीतर ही भीतर उमड़ते आसुओ को रोक कर, नैराश्य की मूर्ति गोपिया आशा भरे नेत्रो से उद्धव को निहारने लगी। उन्हे आशा थी कि शायद उद्धव श्रीकृष्ण के वापस आने का कोई समाचार उन्हें सुनायेंगे। मनभावन कृष्ण का सदेश सुनने की जिज्ञासा और इच्छा इतनी प्रबल होती है कि झुड के झुड बनाकर गोपिया नन्द के द्वार पर एकत्र हो गई। उचक-उचके, पजो के बल खडे होकर उत्कठा भरे मन से सदश सुनने को व्यग्र हो उठी। इसी व्यग्रता में उद्धव से पूछने लगी, बताओ हमको कृष्ण ने क्या लिखा है। हमारे लिए क्या सदेश हैं। गोपियो की इस आतुरता के देखकर उद्धव चकित रह गये। ज्ञान का समस्त चातुर्य समाप्त हो गया, केवल कुशल-सदेश की ही बात सुनते हैं, सदेश देना भूल जाते हैं। उद्धव की मन स्थिति से गोपिया आशकित तो होती हैं किन्तु उनके भीतर कही आशा का कण विद्यमान है जो कहता है कि कृष्ण ने कोई न कोई सदेश अवश्य दिया होगा। वे पूछने का साहस जुटाती हैं किन्तु मुख से वचन नही निकलत, केवल कराह निकल कर रह जाती है। गोपियो की इस दशा से उद्धव भी हतप्रभ हो जात है। ज्ञान का गव दूर हो जाता है। नेत्रो से अश्रु प्रवाह होन लगता है, कठ अवरुद्ध हो जाता है। वे सोचने लगते हैं कि मेरा ज्ञानोपदेश बडा है या इन गोपियो का प्रेम ? अपनी ज्ञान राशि को लुटता हुआ देखकर उद्धव स्वय विभ्रम मे पड कर किंकतव्यविमूढ हो जाते है। उद्धव अपन ज्ञान का सूय लेकर व्रज मे इसलिए आये थे कि व्रज की गोपिया प्रेम के अधकार मे डूबी है, उन्हे ज्ञान का प्रकाश चाहिए लेकिन यहा आने पर उनको ध्यान ही नही रहा कि मैं क्यो यहा आया था। गोपिया की विरह वार्ता सुनते ही उनका ज्ञान का आलोक अस्त हो गया। ज्ञान दीप की बत्ती बुझ गई। एक हाथ मे पत्र जिसमे श्री कृष्ण का सदश था पकडे रह और दूसरा हाथ अपने वक्ष पर रखकर इस दृश्य को देखते रह गये।

इस किंकतव्यमूढ स्थिति से उबरने पर उद्धव को अपने दायित्व का बोध हुआ। उन्हे ध्यान आया कि मैं तो गोपियो को ज्ञान माग का उपदेश देने आया था। अत सचेत होते ही उन्होंने अपने कतव्य का निर्वाह गोपियो को ज्ञानोपदेश से प्रारभ किया। सबसे पहले उन्होने गोपियो को ब्रह्म का स्वरूप समझाया और कहा कि यदि "तुम भगवान कृष्ण को हृदय मे बसाना ही चाहती हो तो योग साधना से उसे अपने भीतर बसाने का प्रयास करो। अपनी आत्मा को परमात्मा मे लीन कर जड चेतन भेद से मुक्त कर लो। यदि तुम यह कर सकोगी तो कृष्ण के बाह्य रूप के दशन की लालसा नही रहगी और तुम कृष्णमय हो जाओगी। तुम कृष्ण से वियोग का अनुभव कर रही हो वह तुम्हारा अज्ञान है। यदि जीव और ब्रह्म का एकत्व समझ सको तो माया अथवा अविद्या का पर्दा हट जाएगा। ध्यान रहे कि समस्त पदार्थों और प्राणियों मे पचतत्व की ही सत्ता है। कृष्ण मे और

तुममे ये पांच तत्व ही व्याप्त हैं। ब्रह्म और जीव का अभेद समझ कर ही तुम कृष्ण से प्रेम करो। सांसारिक भौतिक शरीर की कल्पना मन से हटा दो। तुम में और कृष्ण मे कोई भेद नही है, दोनो एक हैं, यही अद्वैत भाव तुम्हें समझना चाहिए। यह निर्गुण, निराकार ब्रह्म की सत्ता का सच्चा ज्ञान है। जब तक निर्गुण ब्रह्म का योग-साधना से ध्यान नही करोगी ब्रह्म का साक्षात्कार नही होगा, मोक्ष नही मिलेगा, कृष्ण से तादात्म्य नही होगा।"

उद्धव के इस शुष्क ज्ञानोपदेश को सुनकर कोमलांगी ब्रजांगनाएं कांप उठी। अवाक् होकर स्तम्भित रह गइ। किसी किसी गोपिका को बहुत क्रोध हो आया, कोई प्रस्वेद से भर गई, कोई अचेत हो गई। कहने का तात्पर्य यह है कि उन्हें यह उपदेश जरा भी प्रीतिकर नही लगा। वे तो कृष्ण का प्रेम संदेश सुनने आई थी। उन्हें आशा थी कि उद्धव गोपियो को कृष्ण के मथुरा से वापस आने की तिथि की सूचना देंगे। लेकिन उद्धव तो उल्टी-सीधी बातें कह कर गोपियो को कष्ट देने में तत्पर हैं। योग और ज्ञान मार्ग का उपदेश सुनने गोपियां नही आई थी।

गोपियो के मन मे उद्धव के प्रति आक्रोश का भाव आया क्योंकि वह ज्ञान-मूढ व्यक्ति नारी-मन को समझने मे असमर्थ था। प्रियतम से विमुक्त नारी विरह की दशा मे उपदेश नही सुनना चाहती, वह तो प्रियतम से मिलन की आकांक्षा रखती है। गोपियां सीधे तरीके से यही जानना चाहती हैं कि श्रीकृष्ण मथुरा से कब लौटेंगे? हमे निर्गुण ब्रह्म का उपदेश नही, कृष्ण का सुन्दर सलोना प्रत्यक्ष दर्शन चाहिए। उपालंभ की भाषा मे यह भी कहने में नही चूकती कि मथुरा प्रवास के समय श्रीकृष्ण को सारे सुख सुलभ होंगे, उन्हें हमारी याद क्यो आने लगी। उद्धव के मुख से बार बार ब्रह्म की चर्चा सुनकर वे कहती है कि तुम कृष्ण के दूत हो या ब्रह्म के। ब्रह्मचर्चा मे लीन होकर शायद तुम कृष्ण को भूल गये हो। तुम जीव और ब्रह्म की अभेदता तथा अद्वैतता का वर्णन करते हो। हम इस अद्वैत भावना मे विश्वास नही रखती। तुम जो कुछ कह रहे हो वह हमारे लिए सर्वथा अग्राह्य है। जिस श्यामसुन्दर का हम अपने हाथो से श्रृंगार किया करती थी, तुम उसे अरूप, अलेख और अशरीरी ही बताते हो। यह मिथ्या ज्ञान हम कभी मान नही सकते। तुम कहते हो हम योग-साधना करें, प्राणायाम से वायु निरोध करें, किन्तु यह भूल जाते हो कि वायु से तो अग्नि और अधिक प्रज्वलित होती है। हमारी वियोगाग्नि को यह प्राणायाम की वायु अधिक कुपित करेगी। यदि तुम्हारा ब्रह्म निराकार, निर्लेप है तो उसका ध्यान कैसे करें। योग शिक्षा देने आये हो तो कृष्ण से वियोग की बात क्यो करते हो? हमने तुम्हारा उपदेश सुन लिया, अब तुम चुपचाप मथुरा का सीधा रास्ता पकडो और वापस चले जाओ। हम लोक-लाज छोड कर कृष्ण प्रेम मे निमज्जित हुई हैं। हमे अब नियम, व्रत, संयम का उपदेश देना

मूखता है। तुम अशरीरी कृष्ण का ध्यान करने को कहते हो, यह बात ऐसी है जैसे कोई कह कि खरगोश के सीग पकड कर चलो। शश शृ ग की बात जितनी बेतुकी है उतनी बेतुकी ही बात निराकार की उपासना की है। हमारा कृष्ण तो गायो को चराता था, उनका दूध निकालता था, तुम्हारा रूप रग, आकार हीन ब्रह्म ये सब काम कैसे करेगा ?

उद्धव ने गोपियो को जगत का मिथ्यात्व समझाते हुए कहा कि हे गोपियो, यह जगत् स्वप्नवत् है, सत्य नहीं हैं। गोपियो ने तपाक से उत्तर दिया कि स्वप्न तो सोते हुए व्यक्ति को आते हैं। तुम जाग्रत अवस्था मे नहीं हो। सोते हुए व्यक्ति की बात कौन सुने ? तुम्हारा ज्ञान-माग टेढा है। हम सीधे प्रेम मार्ग पर चलने वाली हैं। हम ब्रह्म ज्योति मे लीन नहीं होना चाहती, हमे मुक्ति की चाह नहीं है। हम तो बार-बार जन्म धारण करना चाहती है ताकि हमे प्रत्येक जन्म में कृष्ण का सान्निध्य प्राप्त होता रहे। हम कृष्ण वियोग जन्य दुख विधाता का विधान मान कर भोग रही हैं, हम इस दुख से 'मुक्ति नही चाहती।' निराकार ब्रह्म की उपासना का उपहास तो गोपिया निरन्तर करती रहती है। उनका कहना है हमारा मन श्याम रग (कृष्ण) मे रग गया है। उस पर भगवारग (साधुओ का) नही चढ सकता। मगछाला बिछा कर उस पर बैठना और योग-ध्यान करना भी हमारे लिए सभव नही है क्योकि कृष्ण वियोग म सूख कर हमारा शरीर मृगछाल जसा जजर हो गया है।

गोपियो ने उद्धव के सदेश से खीझ कर कहा कि जो बात तुम सदेश रूप मे हम स कह रह हो वह श्रीकृष्ण-वचन नही है। ये तो कुबजा ने सिखा-पढाकर तुम्हें रटा दिये हैं और तुम हमसे उन्हें कृष्ण-सदेश के नाम से कह रहे हो। हमे तुम्हारा विश्वास नही है। हम तुम्हारी बताई सारी योग क्रिया, ज्ञान, ध्यान करने को तत्पर हैं किन्तु इतना तो बता दो कि यह सब करने से कृष्ण की प्राप्ति सभव होगी या नही ? हम कृष्ण को पाने के लिए तुम्हारे बताये माग पर चलने को तत्पर हैं लेकिन जो चित्र कृष्ण का हमारे हृदय पटल पर अंकित है यदि तुम्हारा बताया ब्रह्म वैसा न हुआ तो हम उसे स्वीकार नही करेंगी। हम भावुक नारिया हैं। सहृदयता हमारा सबल है। हम तक के नेत्रा से कृष्ण को नही देखती, हमारी दृष्टि प्रेम और अनुरागसिक्त है। मथुरा के लोग तक प्रवीण होते है। मयूर पखधारी कृष्ण दशन के लिए सच्ची आखें चाहिए, नकली आख से मोरपख-धारी कृष्ण नही दिखाई देते। यदि तुम ने हमारी आखों से कृष्ण को देखा होता तो तुम निगु ण निराकार ब्रह्म ज्ञान की बात करन का साहस कभी न करते। हमारा प्रेम पारावार, अथाह और अगम है, यह वह सागर नही है जिसे अगस्त्य मुनि ने सोख लिया था। उद्धव ने अपने ज्ञान माग के विषय मे जो कुछ कहा, उसे गोपियो ने तर्क युक्ति पूवक काट दिया। निगु ण, निराकार, रूप, रेख विहीन ब्रह्म

ज्ञान की लम्बी चौडी चर्चा उद्धव को स्वय निरर्थक प्रतीत होने लगी। उद्धव से गोपियो ने केवल अपनी विरह व्यथा ही नही कही, बल्कि उद्धव के ज्ञान मार्गी उपदेश का तुर्की-ब-तुर्की उत्तर भी दिया। यहा कथा का मध्य भाग पूरा होता है।

गोपियो के स्नेहसिक्त एव तर्कपूर्ण वचन सुनकर उद्धव का मन भाव विभोर हो उठा। निर्गुण ज्ञान मार्ग का उपदेश उन्हें स्वय निस्सार प्रतीत होने लगा और उन्होंने निर्णय किया कि अब अधिक सवाद या वार्तालाप की आवश्यकता नही है। गोपियां अपने निश्चय पर अटल हैं, उन्हे किसी भी ज्ञानोपदेश द्वारा अपने निर्णय से विमुख नहीं किया जा सकता। ऐसी स्थिति मे यही उचित है कि मथुरा लौट कर श्रीकृष्ण को गोपियो की मन स्थिति से अवगत करा दिया जाय। फलत उद्धव ने गोपियो को बुला कर कहा कि मैं अब मथुरा वापस जाता हू, यदि तुम्हे कोई सदेश श्रीकृष्ण के लिए देना हो तो दे दो। गोपिया उद्धव को विदा देने मे अपने को असमर्थ पा रही थी। फिर भी वे साहस बटोर कर उद्धव के समीप एकत्र हो गई। श्रीकृष्ण के लिए उपहार स्वरूप कोई गोपी मोरपख लाई थी, किसी के पास अजलि मे घुघचिया थी, किसी के पास स्वादिष्ठ मीठा दही था, किसी के पास छाछ थी। नन्द ने अपने लाडले पुत्र के लिए पीत पट दिया था, यशोदा माता ने ताजा नवनीत और राधा ने सुरीली बाँसुरी भेंट की थी। किसी किसी गोपी का मन इतना भाव विह्वल हो उठा था कि वह कुछ कह नही पा रही थी। फिर भी जो कहना चाहती थी, वह इतना ही कह पा रही थी कि जरा हमारी बात सुन लो, हमारा निवेदन सुन लो। इस प्रकार मिन्नत-आरजू करती हुई गोपिया वहा इकट्ठी थी।

जो गोपिया लिखित सन्देश भेजना चाहती थी, उन्होंने पत्र लिखने का उपक्रम किया, किन्तु स्थिर चित्त से वे कुछ भी लिख नही पाती थी। विरहाग्नि उनके भीतर प्रज्वलित थी और उस विरहाग्नि के कारण स्याही सूख जाती थी, कागज झुलस जाता था। इस प्रकार गोपिया पत्र लिखना चाहती तो हैं पर लिखने मे सफल नही होती। उद्धव इस दृश्य को देख रहे थे किन्तु उन्हें मथुरा वापस जाना था इसलिए ब्रजवासियो की कोई सहायता वे कर नही सकते थे। ब्रजवासी विरह-कातर थे। उद्धव को वापस जाते देख कुछ उसके पीछे चल पडे, कोई अपना सदेश कहने को आतुर हो उठे। उद्धव के प्रस्थान करते ही ब्रज मडल म भयकर उथल-पुथल हो उठी। जड पदार्थ भी चलायमान हो गये उनम विचित्र प्रकार की हलचल देखने मे आई।

जब उद्धव गोकुल म आये थे तब उनका मन ज्ञानोपदेश के लिए पूरी तरह तैयार था। वे गोपियों को निर्गुण ब्रह्म की सत्ता का भान कराने आये थे। किन्तु उनका ज्ञान विगलित होकर ब्रजांगनाओ के प्रेम को देखकर विलीन हो गया, वे गोपियों की भाति प्रेम मार्ग के पथिक बन गये। लौटते समय उनका मन प्रेम

सरोवर की तरगो मे डूबा हुआ था। उनके पैर उठ नही रहे थे। सारथी की सहायता से रथ का मगाकर उद्धव चल तो पडे लेकिन उनके भीतर प्रेमाश्रु उमड रहे थे और बार-बार उनका मन गोकुल की वृज गलियो मे लौटने को करने लगा। उद्धव ने व्रजवासियो से प्रेमाश्रुपूरित गद्‌गद भाव से विदा मागी और मन मे घोर कष्ट का अनुभव करते हुए, उच्छवास पूरित वाणी मे वचन बोलते हुए निस्तब्ध, निश्चल भाव से चल पडे। उद्धव ने व्रज माग मे यह अनुभव किया कि उनका मन निगु णोपासना मे मुक्त हो गया। जिस प्रकार आयुर्वेद शास्त्र मे पार को शोधने के लिए गधक का रासायनिक गुण मिलाकर शोधा जाता है। यहा पारा निगु ण भक्ति का और गधक आदि पदाथ सगुण भक्ति के प्रतीक है। उद्धव के अन्त करण को गोपिया ने अपने प्रेम सदेश मे शुद्ध और निमल बनाकर ज्ञान-मा से हटा कर प्रेम माग पर आरूढ कर दिया। उद्धव के मन म ज्ञान दप से उत्पन्न अहकार दूर हो गया। वे बहुत लज्जित हो कर वापस आये।

उद्धव के आगमन का समाचार सुनकर श्रीकृष्ण बहुत शीघ्रता के साथ उनके पास पहुचे। उनके मन म उद्धव से व्रजवासियो के कुशल क्षेम पूछने की इच्छा थी और उद्धव भी श्रीकृष्ण को व्रज का समाचार देने को व्याकुल थे किन्तु दोनो की मानसिक स्थिति अशान्त थी। कोई भी भली भाति बोलने का साहस नही जुटा पा रहा था। उद्धव की तो मानसिक और शारीरिक दोनो ही स्थितिया चिन्ता जनक हो रही थी। जो बहुत स भेंट उपहार व्रजवासियो ने कृष्ण के लिए दिए थे, उद्धव उन्हे भी सम्भाल नही पा रहे थे। यशोदा ने श्रीकृष्ण के लिए मक्खन और राधा ने बासुरी भेजी थी। श्रीकृष्ण ने उद्धव की यह मन स्थिति देख कर सब कुछ समझ लिया और प्रेम से विह्वल होकर वे उद्धव से लिपट गये। उधर उद्धव की आँखो से अविरल अश्रु प्रवाह हो रहा था। इन अश्रुओ को कृष्ण अपने पीताम्बर से पोंछ कर अपने नेत्रो से लगा कर मुदित हो रहे थे। श्रीकृष्ण व्रज के समाचार जानने को बेचैन थे किन्तु उद्धव कुछ भी कहने की स्थिति मे नही थे। धीरे धीरे चित्त को स्थिर कर उद्धव ने कहना शुरू किया—'हे कृष्ण मैं यहा से ज्ञान की गठरी लेकर बडे अभिमान के साथ व्रज को गया था। वहा पहुच कर मैंने गोपियो की विरह व्याकुल दशा देखी तो मेरा सारा ज्ञान गव समाप्त हो गया। मेरी सारी चातुरी अपने आप विलीन हो गयी। ऐसी विरहाग्नि की ज्वाला मैंने अपने जीवन म कभी नही देखी थी। यह विरहाग्नि तो कालिय नाग की विषज्वाला से भी बढ कर है। बरसाने म वर्षा का पानी शीतलता नही पहुचाता वह तो जलाने और झुलसाने वाला जल है जिसमे गोपिया झुलस रही है।'

उद्धव न बडे स्पष्ट शब्दो मे श्रीकृष्ण से कहा कि जो ज्ञानोपदेश मैं ले गया था, वह व्रज मे किसी को भी प्रीतिकर नही लगा। मैं तो अपना ज्ञान गवा कर व्रज रज का साथ ले आया हू, यह व्रजरज ही अब मेरी सम्पत्ति है। मैंने गोपियो

के प्रेमाश्रु प्रवाह को देखा है। लगता है कि यदि यह प्रवाह जारी रहा तो मथुरा नगरी भी इसम वह जायेगी। मैं तो इन प्रेमाश्रु प्रवाह म स्थिर नही रह सका' मेरे पैर उखड गये और मैं भाग कर मथुरा आ गया। मरी विनम्र प्राथना है कि गोपियो के कष्ट को दूर करन क लिए अविलम्ब ब्रज गमन करें और गोपिया की विरहाग्नि का शमन करें। तो मैं केवल गोपियो की विरह दशा बतान गोकुल स यहा आया हू। अन्यथा मेरी इच्छा तो वही कुटिया बना कर बसन की थी। आपके दशन की अभिलाषा और ब्रज की दशा का समाचार दन ही मैं ब्रज स वापस आया हू।

उद्धव की इस स्थिति का वणन करन के बाद अन्तिम छन्द म रत्नाकर जी ने साग रूपक द्वारा गोपियो की दशा को सूयकान्तमणि क रूप म प्रस्तुत किया है। जिस प्रकार शुद्ध किय हुए काँच का ढाल कर सूयकात मणि बनती है, उसी प्रकार निगु ण ज्ञान, नियम सयम आदि मलो स रहित प्रेम म डुबा कर सूयकान्त मणि बनाकर उद्धव को भेजा गया है। सम्पूण छन्द म सूयकान्त मणि तयार करन की विधि का वणन है और वह उद्धव क नये रूप का व्यक्त करता है। इस छन्द पर उद्धव शतक' समाप्त हो जाता है। यही इस ग्रन्थ का तीसरा और अन्तिम सोपान है।

ooo

५

उद्धव-शतक में चरित्र-चित्रण

उद्धव शतक महाकाव्य या खण्डकाव्य की शली का कथाकाव्य नही है। इसम पात्रा का जमघट भी नही है। यह केवल भाव और विचार प्रधा । मुक्तक शैली की रचना है। हा, केवल विचार और भाव के वणन मे जिन पात्रो का उपयाग कवि ने किया है, उनके शील स्वभाव और व्यवहार का यहा निर्देश किया जा सकता है। यदि पात्रा का उल्लेख करना आवश्यक हो तो तीन ही पात्र इसमे मिलेंगे। श्रीकृष्ण, उद्धव और ब्रजवासी गोप गोपियाँ। गोप गोपिया म न द यशोदा और राधा का नाम विशेष रूप स लिया जा सकता है किन्तु उनकी किसी चरित्रगत विशेपता का उद्धव शतक मे वणन नही है। गापियो की प्रेम साधना और सगुण भक्ति ही समस्त गाप गापिया की चारित्रिक विशेपता है। इसके अतिरिक्त उनके किसी क्रिया कलाप का वणन नही मिलता, स्वभावगत अनयता आदि का वणन अवश्य है।

श्रीकृष्ण

उद्धव शतक काव्य म श्रीकृष्ण को जिस रूप म प्रस्तुत किया गया है, वह सामान्य प्रेमी का रूप है। ब्रजवासियो से विमुक्त हाकर श्रीकृष्ण मथुरा आ गये और मथुरा आकर राजकाज म व्यस्त हो गये। उस व्यस्तता म उन्ह कुछ समय तक ब्रज का ध्यान नही आया। एक दिन यमुना म स्नान करत समय उनके हाथ मे एक कमल का फूल आ गया जिसका नीचे-ऊपर का भाग मुरझाया हुआ था। इस कमल के फूल को जैसे ही सूघने की इच्छा से श्रीकृष्ण न नाक स लगाया त्यो ही उन्ह चक्कर आ गया और वे हाय कह कर अचेत हो गये। इस हाय के साथ उन्ह राधा का स्मरण हा आया क्योकि उसी समय वक्ष पर बैठ एक तोत ने राधा शब्द का उच्चारण किया था। यह स्मृति जन्य प्रेम का वणन है। श्रीकृष्ण के मन में राधा और ब्रज के प्रति गहरा अनुराग था। यह भाव इस प्रथम छन्द म कवि न व्यक्त किया है। कमल पुष्प के गध स अचेत हाने की बात को टीकाकार

यह कहकर राधा से जोडते हैं कि यह फूल राधा द्वारा सूंघ कर यमुना में फेंका गया था ताकि कृष्ण के हाथ पडने पर उन्हें राधा का स्मरण हो जाय। यह तुल्यानुराग का द्योतक है।

श्रीकृष्ण के चरित्र की दूसरी विशेषता उद्धव शतक में प्रच्छन्न रूप से प्रकट की गई है। श्रीकृष्ण प्रेम मार्ग में विश्वास करते थे। गोपियों के साथ ब्रज में रास लीला, दानलीला, मानलीला आदि रचा कर उन्होंने सगुण भक्ति का पथ प्रशस्त किया था। उनके सखा उद्धव ज्ञानमार्गी थे। उन्हें योग साधना, तप, संयम, नियम, व्रत, जप आदि में विश्वास था। श्रीकृष्ण चाहते थे कि एक बार उद्धव ब्रज मंडल जाकर गोपियों के प्रगाढ़ प्रेम को देखें और अनुभव करें कि कौन-सा भक्ति मार्ग वरेण्य है। इस विचार को क्रियान्वित करने की उन्होंने उद्धव को ब्रजभूमि में भेजा और अपना अभीष्ट पूरा किया। यह कृष्ण चरित्र की एक चतुराई है। स्वयं उन्होंने उद्धव से कुछ नहीं कहा वरन् उन्हें गोकुल भेज कर अपने आप वस्तु स्थिति से परिचित होने का अवसर दिया।

श्रीकृष्ण के चरित्र की तीसरी विशेषता जो उद्धव शतक में प्रकट होती है वह उनका ब्रज प्रेम है। ब्रज को श्रीकृष्ण मन प्राण से प्यार करते थे। ब्रज के वन, घन, निकुंज, लता पत्र, गिरि निर्झर, भूमि, सब कृष्ण के मन में गहरे बसे हुए थे। मथुरा में रहते हुए वहां का वैभवमय वातावरण उन्हें बांध नहीं सका उनका मन ब्रज की निकुंज गलियों और वन वीथियों में समाया रहा। उद्धव को ब्रज भेजते समय उनके मन में यह भाव था कि ब्रज का प्राकृतिक सौंदर्य अवश्य उद्धव को मोह लेगा, और यही हुआ भी।

उद्धव

उद्धव शतक में सबसे प्रमुख भूमिका उद्धव की ही है। उद्धव को एक महाज्ञानी पुरुष के रूप में भ्रमर गीत परम्परा में स्वीकार किया गया है। उद्धव बृहस्पति के शिष्य थे। बृहस्पति विद्या ज्ञान और विवेक के भंडार माने जाते हैं। ऐसे ज्ञानी गुरु को पाकर उद्धव में भी ज्ञान और विद्या वैभव का होना स्वाभाविक है। उद्धव अपने वार्तालाप में श्रीकृष्ण को प्रायः ज्ञानोपदेश दिया करते थे। सखा और सचिव होने के कारण श्रीकृष्ण को उद्धव का उपदेश सुनना पडता था। लेकिन श्रीकृष्ण के अंतर्मन में यह बात बनी रहती थी कि केवल निर्गुणोपासना ही भक्ति का मार्ग नहीं है। सगुणोपासक भक्त भी अपने इष्टदेव की पूजा उपासना साकार रूप से कर सकते हैं। ब्रज की गोपियों की प्रीति को श्रीकृष्ण बहुत ऊंचा स्थान देते थे। इसलिए उन्होंने उद्धव को ब्रज भेजा था कि वह ब्रज में जाकर एक बार गोपियों की मानसिक स्थिति से परिचित हो सकें और यह भी जान सकें कि भक्ति का एक मार्ग प्रेमाभक्ति भी है। उद्धव के चरित्र चित्रण में रत्नाकर जी ने यह प्रारम्भ के पदों में दिखाया है कि उद्धव ज्ञानी पुरुष हैं और श्रीकृष्ण के सखा

होने के कारण वे उन्हे समझाने का अपना अधिकार भी समझते है। श्रीकृष्ण को उद्धव ने बहुत ही चातुरी से समझाना चाहा है कि व गोपियो के प्रेम प्रपच मे न फसें। उन्होने हाथी को पकडने और जाल म फसाने की प्रक्रिया की बात कह कर कृष्ण को समझाया और कहा कि पचतत्वो से निर्मित इस ससार मे ब्रह्म ही एक-मात्र वास्तविक सत्य है। वेद शास्त्र सब इसी ब्रह्म का निरूपण और प्रतिपादन करत है। सयोग और वियोग का दु ख कल्पित है। ससार मिथ्या है, क्षण भगुर है, नाशवान है। यह उपदेश उद्धव के ज्ञान से प्रसूत ही थे किन्तु कृष्ण पर उनका कोई प्रभाव नही हुआ।

उद्धव ने ब्रज मे पहुचकर गोपियो को भी यह ब्रह्म ज्ञान का निगु ण उपदेश दिया। उद्धव के चरित्र की विशपता यह है कि वह ज्ञान माग को भक्ति का श्रेष्ठ माग समझत थे और उसे तक प्रमाणो से सिद्ध भी करना चाहते थे। उनकी युक्तियो मे ज्ञान का मम है जो एक बार तो श्रोता को आकृष्ट करता ही है। कि तु उद्धव चरित्र की दूसरी एक और विशेषता है जो कविवर रत्नाकर ने उद्धव शतक मे स्पष्ट रूप से दिखा दी है। उद्धव ज्ञानी है, लेकिन सूरदास के उद्धव की तरह शुष्क और निमम नही है। रत्नाकर जी के उद्धव भावुक भी हैं, सहृदय भी है सरस भी ह और विरह-प्रेम के प्रशसक भी ह। गोपियो की विरह कातर स्थिति उन्हे गहर अन्तस्तल मे छू लेती है। वे सहृदय होकर पसीज उठते है। प्रेमाश्रु विगलित होकर गोपियो की व्यथा को अपनी व्यथा बना लेत है। ब्रज से लौटते समय उनका ज्ञानदप विलीन हो जाता है और वे एक सहृदय प्रेमी व्यक्ति के रूप म श्रीकृष्ण को गोपियो की स्थिति से परिचित करात है। उद्धव शतक के अ तिम छ द म उद्धव का सामा य मानव रूप ही पाठक के सामने आता है। दर्पोद्धत ज्ञानी रूप नही। यह महान परिवतन मानवीय गुण ग्राहकता का ही परिचायक है।

गोप-गोपी

उद्धव शतक म ब्रजवासी गोप-गोपिया के स्वभाव के चित्रण म रत्नाकर जी ने उनके उत्कट प्रेम और तुल्यानुराग का बडे विस्तार से वर्णित किया है। अक्रूर श्रीकृष्ण को मथुरा ले जान क लिए आये ता गोपिया न उसका निषेध किया था। यह सदभ उद्धव शतक म प्रत्यक्ष रूप स कही नही आया है किन्तु उद्धव के आने पर गोपियो न इस भाव का व्यक्त किया है। गोपियो ने पहले ता यह समझा कि उद्धव कोई अच्छा सदेश लेकर आये है कि तु बाद म उन्हे शका हुई कि यह अक्रूर के भेजे हुए हैं। अक्रूर के कृत्य गोपियाँ कठोर समझती थी, इसलिए उद्धव क प्रति भी उनका मन सशक था।

गोपिया श्रीकृष्ण प्रेम मे पूरी तरह डूबी हुई थी। श्रीकृष्ण के सगुण, साकार रूप से उनका अनन्य प्रेम था। निगुण, निराकार ब्रह्म रूप कृष्ण से उनका कोई सरोकार न था। अत उद्धव के ज्ञान मार्गी उपदेश पर उन्होने ध्यान नही दिया। निगुण ब्रह्म के अस्वीकार म गोपियाँ जा तक देती है, वे सब उनके प्रेम को प्रकट करने वाले तक है। गोपिया किसी भी प्रलोभन को स्वीकार नही करती, वे अनन्य भाव स श्रीकृष्ण का पाना चाहती है। उद्धव के सार उपदेश उनके आगे व्यथ मावित होन ह। गोपियाँ निश्छल स्वभाव की है। भोली भाली ह। ब्रज को छोड कर कही जाना नही चाहती। उनका प्रेम एकनिष्ठ है। श्रीकृष्ण के प्रति जिस निष्ठा-आस्था स वे प्रेम रखती है, वह उद्धव जस ज्ञानी व्यक्ति को भी द्रवित कर देता ह। निगुणोपासना के खण्डन म व जो युक्ति-तक प्रस्तुत करती है व देखने मे स्थूल प्रतीत हान है किन्तु उनम अपन विश्वास की दृढता है। उद्धव के सभी उपदेश उनके लिए थोथे ज्ञानोपदेश ह जो गोपिया के मम स्थूल को छू नही पात।

गोपियो के स्वभाव म रूपगर्विता होने का भी सकेत है, श्रीकृष्ण के प्रति अपने प्रेम का वणन करत समय वे अपने रूप सौन्दय की बात भी अस्फुट रूप स कह देती है। प्रेमगर्विता होना तो स्त्री के लिए उचित है किन्तु रूपगर्विता होना कुछ अच्छा नही लगता, किन्तु नारी स्वभाव म यह गव प्राय पाया जाता है।

सक्षेप म, चरित्र चित्रण की दृष्टि से उद्धव शतक म न तो पात्रो का जमघट है और चरित्रा का गहरा, दुर्बोध और जटिल चित्रण। तीनो पात्र अपनी-अपनी विशेपता के साथ इस काव्य म पाठक के सामने आत है। सगुण और निगुण उपासना का द्वन्द्व भी पात्रो के सवादो स उभरता है। चारित्रिक गुणो के प्रस्फुटन का इसम विशप अवकाश नही है क्योकि कथा का एक ही बिन्दु है। उपकथाए भी अवान्तर प्रसग इसम नही है। कृष्ण का चरित्र तो प्रारभ के दस-बारह छन्दो म समाया है जहा व अपनी विरह विदग्ध मन स्थिति का वणन करत ह। ब्रज प्रेम को प्रदर्शित करन म ही उनक चरित्र की उदात्त प्रेम भावना उदघाटित होती है। उद्धव अपन ज्ञान और उपदश क कारण एक विद्वान पडित के रूप मे पाठक के सामन आत ह। पहल एसा लगता है कि बृहस्पति का यह शिष्य शुष्क ज्ञानमार्गी होगा, हठी और दुराग्रही हागा लकिन उद्धव शतक क अत म उद्धव सहृदय, भावुक और प्रेमी व्यक्ति का रूप धारण कर लेत ह। उनक हृदय का परिवतन कृत्रिम न हाकर प्रेम के प्रभाव की स्वाभाविक परिणति है।

गोपियाँ और ब्रजवासी इस काव्य म उत्कृष्ट कोटि क अनन्य प्रेमी के रूप म वर्णित है। गोपियाँ भोली भाली है किन्तु उद्धव क ज्ञान और निगुण उपदश का न मानन म सर्वाधिक एव दृढ आग्रही ह। उनकी अनन्यता निष्ठा आस्था इस काव्य म चरम उत्कष पर है। इस प्रकार चरित्र चित्रण की दृष्टि स न्यूनावकाश रहने पर

भी कवि ने इन पात्रो के चरित्र की विशेषताए अवश्य स्पष्ट कर दी है।

गोपिया के चित्रण म असूया और स्त्री सुलभ ईर्ष्या का भाव भी रत्नाकर जी ने उभारा है। गोपिया श्रीकृष्ण के प्रति सशक होकर कुब्जा के प्रति आकर्षण के की बात कहती ह। उनका आरोप है कि कुब्जा ने अपने प्रेमपाश मे श्रीकृष्ण को फँसा लिया है इसलिए वे मथुरा से वापस नही आ रहे है। इस बात को उपालभ शैली से गोपियो ने पाच छह छदो म बडी मार्मिक शैली मे व्यक्त किया है। नारी स्वभाव की यह दुर्बलता गोपिया के चरित्र म स्पष्ट हो गई है।

० ०

६

उद्धव-शतक मे दार्शनिक विचार

उद्धव शतक शृ गार प्रधान काव्य है। गोपिया व कृष्ण प्रेम को उदात्त भूमि पर स्थापित कर ज्ञान, योग, निगु ण आदि साधनो से श्रेष्ठ सिद्ध किया है। अत किसी दार्शनिक मतवाद या तद्दार्शनिक विचारधारा का वर्णन करना इसका मूल उद्देश्य नही है। किन्तु प्रेमाभक्ति की उत्कृष्टता और निगु णोपासना से श्रेष्ठता सिद्ध करने के सदर्भ मे दार्शनिक विचारो का इस काव्य मे समावेश हुआ है। भ्रमरगीत परम्परा मे सूरदास और नन्ददास के भ्रमर गीतो म भी यह दार्शनिकता पूरी तरह लक्षित की जा सकती है। नन्ददास की गोपियो की तर्कपद्धति तो दर्शन की भित्ति पर ही आश्रित है और वे उद्धव को अपनी सगुणोपासना की श्रेष्ठता सिद्ध करते समय ब्रह्म जिज्ञासा की चर्चा दर्शन के परिप्रेक्ष्य मे ही करती है। सूरदास की गोपियो मे वैसी तीक्ष्ण तर्क बुद्धि तो नही है किन्तु उद्धव के ब्रह्म ज्ञान को अस्वीकार करते समय वे भी दर्शन की मर्यादा का पालन करती है। वस्तुत यह सदर्भ भागवतपुराण से जुडा हुआ है और इसमे दार्शनिक विचारो का समावेश अन्य कवियो द्वारा किया गया है। उद्धव शतक का कवि भी इस परम्परा से जुडा रहा है और उसने भी अनेक कवित्तो म उद्धव के द्वारा दर्शन की गहन-गभीर बाते कहलाई हैं।

उद्धव शतक म जिन दार्शनिक विचारो का समावेश कवि ने किया है उसका मूलाधार निगु णोपासना ही है। निगु ण ब्रह्म की जिज्ञासा मे जो योग, ध्यान, जप, तप आदि विहित है उनका भी वर्णन उद्धव ने किया है। वेदान्तदर्शन के अनुसार इस दृश्यमान् जगत मे एकमात्र ब्रह्म ही सत्य है। जो चक्षुगोचर है वह मिथ्या है। अज्ञान, अविद्या या माया के कारण जीव को इस पदार्थ जगत की सब बातें मिथ्या प्रतीत होती है। वास्तविक दृष्टि से ब्रह्म और जीव, ब्रह्म और जगत पृथक् अस्तित्व नही रखते। 'ब्रह्म सत्य, जगत मिथ्या, ब्रह्मजीवैवनापर । सर्वखल्विद ब्रह्म नेह नानास्ति किंचन। के अनुसार उपासना के लिए किसी सगुणसाकार ईश्वर या देवता की कोई आवश्यकता नही। यह ठीक है कि जीव को अपने चम

चक्षुओ से प्रत्येक पदाथ का पृथक अस्तित्व भासमान होता है किन्तु तत्वत यह पथकत्व है नही। जो दश्यमान् जगत् हमारे सामने है वह क्षणभगुर है नाशवान है, प्रतिपल परिवतनशील ह, अस्थायी और अयथाथ है। यह दाशनिक चिन्तन निगु णोपासना का मूलाधार है और यही ज्ञानी उद्धव द्वारा इस प्रकार व्यक्त कराया है

पाचो तत्व माहि एक सत्व की ही सत्ता सत्य
यही तत्व ज्ञान कौ महत्त्व श्रुति गायौ है।
तुमतौ विवक रत्नाकर कहौ क्यो पुनि
भेद पचभौतिक के रूप म रचायौ है।
गोपिन मैं, आप मै, वियोग और सजोगहू मैं,
एकै भाव चाहिए सचा ठहरायौ है।
आपु ही सो आपुको मिलाप और बिछोह कहा
मोह यह मिथ्या सुख-दुख सब ठायौ है।

इस कवित्त म दाशनिक विचार को सम्पूणता के साथ व्यक्त करके रत्नाकरजी न स्पष्ट कर दिया है कि कृष्ण और गोप-गोपिया दो पथक् सत्ता वाले जीव न होकर एक ही ब्रह्म के रूप है, दोना मे अभेद है अत वियोग और सयोग की बात करना ही व्यथ है। यह दाशनिक विचार अद्वैत वेदात का ही सार है। इसी दाशनिक तथ्य को उद्धव ने गोपिया के सामने भी प्रस्तुत किया है। विचार वही है किन्तु मात्र शब्द भेद है। कवित्त सख्या ३१ मे यही भाव है—

पच तत्व मैं जो सच्चिदानन्द की सत्ता सो तो
हम तुम उनमैं समान ही समोई है।
कहै रत्नाकर विभूति पच भूत हू की
एक ही सी सकल प्रतिभूतिन मैं पोई है।
माया के प्रपच ही सौ भासत प्रभेद सबै
काच फलकनि ज्यो अनक एक सोई है।
देखौ भ्रम पटल उघारि ज्ञान आखिनि सौ
कान्ह सबही मैं कान्ह ही मैं सब कोई है।

अद्वत दशन की तात्विक दृष्टि यही है कि समस्त पचभौतिक पदार्थो मे जीव और जड जगत् म सच्चिदानन्द ब्रह्म की सत्ता समान रूप स व्याप्त है। माया का प्रपच, जिस दाशनिक शब्दावली म, अध्यास कहते है, भ्रम उत्पन्न करके एक को अनेक रूप मे प्रतिभासित करता है। काच फलक मैं जैसे एक मूर्ति अनेक रूप मे दृष्टिगत होती है वैसे ही एक ब्रह्म इस जगत् म अनेक रूप मे लक्षित होता है। यदि ज्ञान की आँखें खोल कर हम इस माया के भ्रम पटल को हटाकर देखें तो कृष्ण म ही सब दिखाई देंग और समस्त गोचर जगत् मे कृष्ण होगे। यह दिव्य

दृष्टि यथार्थ ज्ञान ब्रह्म जिज्ञासा में ही सुलभ हो सकता है। इसी भाव को अगले कवित्त में रत्नाकर जी ने और अधिक स्पष्ट शब्दों में व्यक्त किया है—

सांई काहू, सोई तुम सोइ सबही हैं लगौ,
घट घट अंतर अनंत स्यामघन को।
कहै रत्नाकर न भेद भावना सौं भरौ
वारिधि औ बूंद के विचारि बिथुरन कौ।
अविचल चाहत मिलाप तौ विलाप त्यागि
जोग जुगती करि जुगावौ ज्ञान धन कौं।
जीव-आतमा कौं परमातमा मैं लीन करौ
छीन करौ तन कौ, न दीन करौ मन कौ।

मूल भाव की दृष्टि से यह कवित्त भी उसी दार्शनिक विचार का समर्थक है जो पहले कवित्त का है किन्तु उदाहरण में कुछ अन्तर है। समुद्र और समुद्रजल की बूंद में वास्तविक भेद नहीं होता, दोनों ही समुद्रजल हैं। यदि वास्तव में गोपियां कृष्ण के साथ मिलन की आकांक्षी हैं तो उन्हें वियोग विलाप त्यागकर योग ध्यान द्वारा ज्ञान मार्ग से अपनी आत्मा का परमात्मा में लीन करने का उपक्रम करना चाहिए। वियोग के कारण शरीर को क्षीण करना और विलाप करके मन को हीन बनाने की कोई आवश्यकता नहीं है। यही दर्शन-पथ गोपियों को श्रीकृष्ण से मिला सकता है। प्रेम और शृंगार की लौकिक भूमि पर मिलन मिथ्या है।

उद्धव के ब्रह्म ज्ञान विषयक दार्शनिक विचार उद्धव शतक में पूर्वपक्ष में ही गृहीत है। गोपियां इस ज्ञान मार्ग के दर्शन को अस्वीकार कर देती हैं। उनके पास श्रीकृष्ण मिलन का अपना दर्शन है, अपनी आस्था, निष्ठा और अनन्य प्रेम का मार्ग है जो उन्हें इन उपदेशों के ग्रहण करने से रोकता है। गोपियां ज्ञानी नहीं, प्रेममार्गी हैं। प्रेमाभक्ति का अपना सगुण दर्शन है और उस सगुण भक्ति के दर्शन को गोपियां उद्धव के समक्ष प्रस्तुत करते में जरा भी हिचकिचाती नहीं। प्रेमाभक्ति का यह माधुर्यभाव का दर्शन ही वास्तव में उद्धव शतक का सिद्धान्त पक्ष है। इस सिद्धान्त पक्ष के दर्शन को गोपियों ने बड़ी तर्काश्रित शैली से प्रतिपादित किया है। गोपियां पहले तो उद्धव के ज्ञानमार्गी ब्रह्मज्ञान का सतर्क खंडन करती हैं। खंडन के उपरान्त वे अपने सगुण भाव की स्थापना करने में तत्पर होती हैं। गोपियां उद्धव के ज्ञानोपदेश के दार्शनिक मन्तव्य को सुनकर भी अनसुना सा कर देती हैं। वे यह बताना चाहती हैं कि जिस गूढ़-गंभीर ब्रह्मज्ञान की बात तुम कह रहे हो वह हमारी अपनी बुद्धि के लिए दुर्बोध है। हम नहीं समझ सकीं कि तुम किस दर्शन की हमसे चर्चा करते रहे हो। बहुत ही अबोध बनकर गोपियां अपने आराध्य प्रेमी कृष्ण के विषय में एक सीधा प्रश्न उद्धव के सामने रख देती हैं।

हे उद्धव ! यह बताओ कि हमारे प्यारे कृष्ण मथुरा से कब लौटेंगे और कब हम उनका मुख देख सकेंगे ! हम यह भी बताओ कि कृष्ण मथुरा म क्या करते रहते है ? क्या कभी वह यमुना तट पर जाकर, वट वक्ष की छाया मे बैठ, प्रफुल्ल मन से बासुरी बजाते है ? यह प्रश्न सीधा सादा है किन्तु सगुण-साकार श्रीकृष्ण की प्रेममयी भक्ति का आधार है।

इस प्रश्न के बाद गोपिया अपनी तर्क-बुद्धि का प्रयोग करती हुई उद्धव के दाशनिक मन्तव्यो का सयुक्तिक शली स खडन करना प्रारम्भ करती है। उद्धव न समुद्र और बूद का उदाहरण देकर दोनो का अभेद सिद्ध करना चाहा था। गोपिया इस अभेद को अपने तक से काटती हुई कहती हैं कि यदि समुद्र और बूद मे अभेद मान भी लें तो समुद्र (कृष्ण) की असीमता म तो कोई अन्तर नही पडता किन्तु अकिंचन तुच्छ बूद (गोपी) तो समाप्त हो जाती ह। अपना अस्तित्व खोकर हम एस अभेद को कैसे स्वीकार कर सकती ह ? अपन पथक् अस्तित्व की बात गोपिया ने कवित्त सख्या ३७ म स्पष्टत कह दी ह। यह विचार शुद्धाद्वैत दशन के मेल म है, अद्वत के नही। उद्धव न गोपिया से कहा था कि श्रीकृष्ण तो साक्षात ब्रह्म है जो रूप, रग, गुणहीन हैं, उनका नेत्र मूदकर ध्यान ही किया जा सकता है, उनका स्पश सभव नही है। गोपिया इसके प्रत्युत्तर म उद्धव स कहती है कि जिस कृष्ण को तुम रूप रसहीन कहते हो उसी के रूप का ध्यान और रसास्वाद की बात करना स्वय विरोधाभास है। इस विशाल विश्व मे व्याप्त जिस ब्रह्म को तुम अगोचर, अदश्य और अलक्ष्य कहत हो उस हम किस प्रकार अपनी त्रिकुटी म समेट कर ध्यान का विषय बना सकती है। यह निगुण तो हमारे लिए कष्टसाध्य ही नही असभव है।

उद्धव न गोपियो को मुक्ति प्राप्ति का साधन निगुणोपासना बताया था। गोपिया इस मुक्ति की भी कामना नही करती। व स्पष्ट शब्दो म कहती है—'मुक्ति मुकता को मोल माल ही कहा है जब, मोहनलला प मन-मानिक ही वारि चुकी।' यहा मोती और माणिक्य का श्लष भी चमत्कार उत्पन्न करने वाला है। उद्धव ने ब्रह्म को रूप रगहीन अनग कहा था, गोपिया यहा अनग शब्द स कामदेव का अथ ग्रहण करती हुई कहती है—एक ही अनग साध साव पूरी अब, और अग रहित अराधि करो है कहा ?

उद्धव ने जिस ब्रह्म का निरूपण किया था गोपिया उस अस्वीकार करती हुई जो युक्तिया देती ह वे इतनी सीधी, सरल और आकषक है कि उद्धव का गूढ दशन उनके समक्ष ठहर ही नही पाता। निराकार ब्रह्म ही यदि श्रीकृष्ण है तो वे बिना हाथ के गायो का दूध कस दुहेंगे, पैरो के बिना थिरक थिरक कर नाचेंगे कैस ? बिना मुख के मक्खन कैसे खायेंगे, बासुरी कस बजायेंगे, बिना आख और कान के ब्रजवासियो की विपत्ति को कसे देखें और सुनेंगे। हे उद्धव ! तुम

हमे योगी बनाना चाहते हो लेकिन वियोग के भोग के भोगी हम किस प्रकार कमे है। यह साधना भी तो कष्टपूर्ण ही है। इतना स्पष्ट कह देने के बाद कुछ आवेश और क्रोध की मुद्रा मे भी गोपियां उद्धव को फटकारती हुई-सी कहती हैं—

जोग को रमावें औ समाधि को जगावें इहा
दुख सुख साधनि सों निपट निवेरी है।
+ + + +
चेरी हैं न ऊधो ! काहू ब्रह्म के बबा की हम
सूधो कहे देति एक कान्ह की कमेरी है।

गोपियो का दर्शन प्रेमाभक्ति पर आधृत सगुण-साकार भक्ति का दर्शन है। इस दर्शन को किसी एक खास दार्शनिक मतवाद में बाधा नही जा सकता। वल्लभाचार्य ने जिस शुद्धाद्वैत दर्शन का प्रतिपादन किया है वह भी गोपियो द्वारा कही स्पष्टत वर्णित नही है। इतना स्पष्ट है कि गोपियां अद्वैत दर्शन का खण्डन पूरी निष्ठा और दृढ़ता से करती है। उनके पास तर्क, युक्ति और प्रमाण का सबल है। उद्धव के ज्ञानोपदेश से वे तनिक भी प्रभावित नही होती वरन प्रत्येक निर्गुण साधन का सटीक रूप से खडन कर देती हैं। उद्धव को समझाने के लिए उन्होने बडे अनुनय विनय भाव से कहा है कि तुम ब्रह्म सत्कार की लम्बी चौडी गूढ बात तो करते हो किन्तु एक बार हमारी आख से यदि तुम कृष्ण के रूप माधुर्य को देख लेते तो शायद ऐसी बेतुकी बात न करते—

ऊधो ब्रह्म ज्ञान को बखान करत न नैकु
देख लेत कान्ह जो हमारी अखियान सौं।"

उद्धव की दार्शनिक विचारधारा मे पातजल योगदर्शन का भी यत्र-तत्र पुट है। चित्तवृत्तियो के निरोध का उपदेश, अभ्यास और वैराग्यसाधन का उपदेश, चित्त को वीतराग बनाने का उपदेश, अविद्या, अस्मिता राग-द्वेष का अभिनिवेश ही क्लेशजनक है आदि सब कथन योगशास्त्रानुकूल ही हैं। सक्षेप म, उद्धव शतक म दो प्रकार की दार्शनिक विचारधाराए मिलती हैं। पहली दार्शनिक विचारधारा के समर्थक उद्धव हैं जिसे हम पूर्वपक्ष की विचारधारा कह सकते हैं। यह विचारदर्शन अद्वैतदर्शन-परक है। निर्गुण निराकार ब्रह्म का इसमे उपदेश है। दूसरी विचारधारा गोपियो की है। इसका दार्शनिक आधार तो इतना पुष्ट नही है परन्तु भक्तिमार्ग की सगुणोपासना की प्रतिष्ठा अति सबल रूप से की गई है। यह सगुण भक्ति ही दर्शन का रूप ग्रहण कर सकी है। अत इसे हम उद्धव शतक का सिद्धान्तपक्षीय दर्शन कह सकते हैं।

००

७

उद्धव-शतक की भाषा

उद्धव शतक आधुनिक युग की रचना है किन्तु उसकी भाषा मध्यकालीन ब्रजभाषा है। आधुनिक युग मे ब्रजभाषा को स्वीकार कर काव्य रचना करने वाले कवियो मे रत्नाकर जी का स्थान मूर्धन्य है। रीतिकालीन कवियो ने ब्रज-भाषा को परिष्कृत और प्रांजल बनाकर जो रूप दिया था उसे रत्नाकर जी ने और अधिक परिमार्जित, ललित, श्रुति मधुर एव प्रवाहपूर्ण बनाया इसमे तनिक भी सन्देह का अवकाश नही है। रीतिकालीन केशव, देव, बिहारी, मतिराम, घनानन्द, पदमाकर आदि कवियो द्वारा जो ब्रजभाषा रत्नाकर जी को विरासत म मिली थी उसे अपनी प्रतिभा से और अधिक ललित एव लावण्यपूर्ण बनाने मे इनका योगदान भुलाया नही जा सकता। उद्धव शतक की ब्रजभाषा मे सौष्ठव की दृष्टि से जो सुघडता लक्षित होती है वह रत्नाकर जी की प्रतिभा का ही सुफल है।

जिस समय रत्नाकर जी काव्य रचना मे प्रवृत्त हुए उस समय हिन्दी मे भाषा के स्तर पर खडी बोली को स्थापित करने का आन्दोलन सफल हो चुका था। श्री अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' का प्रसिद्ध खडी बोली-काव्य 'प्रिय प्रवास' प्रकाश मे आ चुका था। मुक्तक रचनाओ म खडी बोली स्वीकृत भाषा के रूप मे अपने पर जमा चुकी थी। ब्रजभाषा म रचना करने वाले भी ब्रजभाषा छोड कर खडी बोली की ओर खिचने लगे थे। ऐसे भाषा-सक्रान्ति के समय रत्नाकर जी ब्रजभाषा की पताका फहराते हुए अडिग भाव से जम खडे थे और ब्रजभाषा को और अधिक सक्षम भाषा के रूप म प्रस्तुत कर रहे थे। उस युग मे रत्नाकर जी ही एकमात्र रचनाकार थे जो ब्रजभाषा का दामन थामे अविचल भाव से ब्रजभाषा मे काव्य-सृजन करने म पूरी निष्ठा के साथ तल्लीन थे।

ब्रजभाषा अपने पदलालित्य, अर्थगौरव, माधुर्य और श्रुति पेशलता के कारण मध्य युग मे भक्त और सतो द्वारा रीतिकाव्य प्रणेता आचार्य कवियो द्वारा तथा स्वच्छन्दतावादी शृगारी कवियो द्वारा समान रूप मे समादृत हुई। रत्नाकर जी

ने इसी विषय को ग्रहण किया और ब्रजभाषा को अधिकाधिक सवारने-सजाने का भरसक प्रयत्न किया। कहना न होगा कि उनके भाषा विषयक प्रयत्नो से ब्रज भाषा मे और अधिक लोच, लावण्य तथा सम्प्रेषणीयता आई। रत्नाकर जी का प्रयास निरतर यह रहा कि परम्परागत ब्रजभाषा को साहित्यिक धरातल पर पूरी तरह स्थापित करने के साथ लोकप्रिय बनाया जाय। रीतिकालीन कवियो ने ब्रजभाषा को प्रौढ अवश्य बनाया था किन्तु उस समय के कवियो ने शब्द चयन, वाक्यविन्यास वतनी और क्रिया कारण प्रयोग मे एकरूपता पर ध्यान नही दिया। भाषा मे प्रौढता और परिपक्वता आने पर भी साहित्यिक स्तर पर एकरूपता का अभाव खटकता रहा। रत्नाकर जी ने इस अभाव को दूर करने का स्तुत्य प्रयास किया। यदि शुद्ध, सुसस्कृत, परिमार्जित एव प्राजल ब्रजभाषा का रूप देखना हो तो रत्नाकर जी की ब्रजभाषा म वह देखा जा सकता है। उसका भी सवश्रेष्ठ रूप उद्धवशतक मे लक्षित होगा।

रत्नाकर जी भाव प्रकट करने मे भाषा की शक्ति को प्रमुख स्थान देत हैं। उन्होंने हिन्दी-साहित्य सम्मेलन के सभापति पद स दिये गये भाषण मे भाव और भाषा के पारस्परिक सम्बन्ध को इस प्रकार व्यक्त किया है

'काव्य के विषय मे यह निर्विवाद मत है कि वह ऐसा वाक्य है जिसके सुनने अथवा पढने से सहृदय को एक अलौकिक आनन्द की प्राप्ति हो। उसमे रमणीयता के मुख्य दो कारण होते है। एक तो किसी ऐसे विषय या भाव का वणन होना जो स्वभावत ही मनुष्य जाति को अलौकिक आनन्दप्रद है, दूसरे किसी विषय या भाव के व्यक्त करने का कुछ ऐसा ढग जिससे सुनने वाले का चित्त प्रसन्न हो जाय। जिस काव्य मे यह दोनो बातें हो, वह परम श्रेष्ठ है, पर जिसम इन दोनो मे से एक भी न हो उसे तो काव्य कहना ही व्यथ है।' कथन की शली भाषा पर निभर करती है और भाषा मुख्य प्रयोग, व्याकरण और शब्दचयन पर। रत्नाकर जी ने इसका निरतर ध्यान रखा है।

यह ठीक है कि ब्रजभाषा रत्नाकर जी की मातभाषा नही थी। रत्नाकर जी ने पूव रचित काव्यो का अनुशीलन कर अभ्यास द्वारा इसका अजन किया था। अर्जित भाषा होने पर भी इसम निपुणता प्राप्त कर रचना-कौशल से भाषा को अलकृत और व्यवस्थित बनाने का श्रेय रत्नाकर जी को है। 'अपने अध्ययन के बल पर रत्नाकर जी ब्रजभाषा की नसर्गिक प्रकृति से इतना अधिक परिचित हो गये थ कि सस्कृत अरबी, फारसी तथा बनारसी बोली के शब्दो को ब्रजभाषा म ढालने म उन्हे कठिनाई नहीं होती थी। उनकी रचनाओ म विभिन्न भाषाओ के शब्द ऐसी खूबी से आये हैं कि उनके कारण ब्रजभाषा की प्रकृति म कही अन्तर नही पडा है। किसी भाषा विशेष की प्रकृति को अक्षुण्ण रखते हुए उसम अन्य भाषाओ के शब्दो का सफलतापूवक समावेश कर देना साधारण बात नहीं है,

परतु रत्नाकर जी के लिए यह कठिन काय भी सरल थी। अरबी फारसी के शब्दो को ग्रहण करके भी उनकी भाषा क्लिष्ट नही हुई है।' (रत्नाकर : उनकी प्रतिभा और कला पृ० २३४)

रत्नाकर जी के घर की भाषा बनारसी थी। ब्रजभाषा मे काव्य रचना करते समय काशी की बोली मे प्रचलित शब्दो को रत्नाकर जी ने सहज रूप मे ग्रहण किया है। उद्धव शतक म भी ऐसे बोलचाल के शब्द मिल जाते है। पवारि, उदवासना, उधराना, अगजना आदि शब्द बनारसी बोली के है जिन्हे ब्रजभाषा म रत्नाकर जी ने पूरी तरह खपा दिया है। भाव और भाषा का प्रत्यक्ष सबध है। यदि कोमल भाव है तो रत्नाकर जी कोमलकान्त पदावली का प्रयोग करते है और यदि पुष्ट भाव है तक वितक या दार्शनिक चितन है तो भाषा भी तदनुसार गूढ और गम्भीर होने के साथ कठोर हो जाती है। गोपिया उद्धव की उपदेश वार्ता सुनकर जिस स्थिति मे पहुच गइ वह घबराहट और व्यथा की स्थिति है। इस दशा के वणन मे कोमल शब्दो का ही प्रयोग समीचीन माना जायगा। रत्नाकर जी के अनेक छन्द उद्धव शतक मे इसी भाषा मे लिखे उपलब्ध है

सुनि सुनि ऊधव की अकह कहानी कान
कोऊ थहरानी, कोई थानहि थिरानी है।
कहै रतनाकर रिसानी बररानी कोऊ
कोऊ बिलखानी, बिकलानी, बिथकानी है।

इस कवित्त म सगीत का प्रवाह शब्दा की लोच द्रष्टव्य है। समस्त क्रियापद एक ही लय-ताल म बधे प्रवाह मे बह जाते प्रतीत होत है। कणकटु शब्दो का पूण बहिष्कार है। ब्रजभाषा की नैसर्गिक प्रवृति के अनुकूल शब्दो का चयन और विन्यास के लिए उद्धव शतक अप्रतिम निदशन है—

चिता मुनि मजुल पवारि धूरि धारनि मे
काच मन मुकुर सुधारि रखिबो कहौ।
\+ × ×
एते बडे बिम्ब माहि हेर हू न पये जाहि
ताहि त्रिकुटी मे नन मूदि रखिबो कहौ।

सगीतात्मक अनुप्रास विधान का चातुय तो रत्नाकर जी के काव्य-कौशल का एक उत्कृष्ट गुण है। अनुप्रास शब्दालकार है किन्तु उद्धव शतक मे वह भाषा का सहज प्रवाह बनकर प्रयुक्त हुआ है।

रत्नाकर जी की ब्रजभाषा का सौष्ठव उसके व्याकरण सम्मत, लौकिक दृष्टि म प्रयोगानुकूल और अभिव्यजना सौदय के कारण बेजोड कहा जा सकता है। उद्धव शतक म एम अनेक शब्दो का प्रयोग है जिसमे सौदय की सृष्टि रत्नाकर जी की पदयोजना के कारण ही हुई है। यदि उन शब्दो को उलट फेर के साथ

इधर-से उधर कर दिया जाय तो काव्य सौंदर्य नष्ट हो जायगा। ब्रजमण्डल की प्रशंसा करते रत्नाकर जी ने उद्धव के मुख से यह कवित्त कहलाया है। इसका भाव-सौंदर्य शब्द सम्पत्ति से ही निखरा है। उद्धव कहते हैं—

छावते कुटीर कहूं रम्य जमुना के तीर
गौन रौन रेती सों कदापि करते नहीं।
कहै रतनाकर विहाय प्रेम-गाथा गूढ़
स्रोत रसना में रस और भरते नहीं।
गोपी ग्वाल बालनिके उमड़त आंसू देखि
लेखि प्रलयागम हू नैंकु डरते नहीं।
होतौ चितचाव जो न रावरे चितावन कौ
तजि ब्रज-गांव इतै पांव धरते नहीं॥

उद्धव ने ब्रज में पहुंच कर गोपियों की विरहजन्य स्थिति को प्रत्यक्ष देखा तो वे स्वयं स्तब्ध एवं चकित रह गये। समझ ही नहीं सके कि इनसे किस भाषा में क्या बात की जाय। उस स्थिति का शब्द चित्र द्रष्टव्य है—

दीन दशा देखि ब्रजबालनि की ऊधव को
गरि गो गुमान ज्ञान गौरव गुठाने से।
कहै रतनाकर न आए मुख बैन नैन
नीर भरि ल्याए भए सकुचि सिहाने से।
सूखे से स्रमे से सकबके से सके से थके
भूले से भ्रमे से भभरे से भकुवाने से।
हौले से हले से हूले-हूले से हिये में हाय
हारे से हरे से रहे हेरत हिराने से।

उपर्युक्त कवित्त में रेखांकित शब्दों में ब्रजभाषा की छटा लक्षित करने योग्य है। ये सभी शब्द सामान्य बोलचाल की भाषा के हैं। साहित्यिक चमक इनमें नहीं है किन्तु अर्थ को पूरे संदर्भ के साथ उजागर करने की इनमें विलक्षण शक्ति है। गुठाने, सिहाने सकबके, सके, भभरे, भकुवाने, हौले हूले-हूले, हिराने आदि शब्द ठेठ ब्रजभाषा के हैं। इनका अपना सहज सौंदर्य है जो आभिजात्य के मेल में न होने पर भी अभिव्यक्ति को भाव के संदर्भ में सम्प्रेषणीय बना देता है। ब्रजभाषा का माधुर्य इसी आंचलिकता को व्यापक आयाम देता है।

मुनिन मुक्ता की मौन माल ही कहा है जब
मोहन लला प मन मानिक ही वारि चुको।

मकार के अनुप्रास की छटा को जितना सहज, स्वाभाविक इन पंक्तियों में रत्नाकर जी ने बना दिया है वह ब्रजभाषा के प्रवाह में ही संभव है। मकार की सात बार आवृत्ति न तो कृत्रिम लगती है और न आडम्बरपूर्ण अलंकृति ही इसे कहा

जायगा। यह तो ब्रजभाषा की नैसर्गिक प्रकृति है। उद्धव को मीठी फटकार लगाते हुए गोपियाँ कहती हैं—चेरी है न ऊधो ! काहूँ ब्रह्म के बवा की हम, सूधो कहे देति एक कान्ह की कमेरी है। कान्ह की कमेरी तो ब्रजभाषा में ही सगत है, खड़ी बोली या किसी अन्य बोली में वह कमेरी शब्द खपेगा ही नहीं। दासी, सेविका आदि के साथ कमेरी को बिठाने का चातुर्य रत्नाकर जी की कलम में ही है। रत्नाकर जी ने परिचारिका-जैसे अभिजात शब्द का भी इसी अर्थ में प्रयोग किया है किन्तु कमेरी-जैसी अभिव्यंजकता उसमें नहीं है।

उद्धव गोपियों से मिलकर मथुरा वापस जाने लगे। उन्होंने गोपियों से आग्रह किया कि वे सब अपना सदेश कृष्ण के नाम लिखकर उन्हें दे दें। गोपियाँ पत्र लिखने बैठीं किन्तु किसी को भी लिखने का उपक्रम नहीं सूझा। मन में कोई बात स्फुरित नहीं हुई, हाथ रुक गया। विरहातप से जलती हुई गोपियों की विचित्र दशा हुई, उसका वर्णन ऊहात्मक पद्धति से कवि ने किया है। ऊहात्मक पद्धति यद्यपि रत्नाकर जी का प्रिय नहीं थी किन्तु ब्रजभाषा के अनुकरण से वे बिहारी को सर्वश्रेष्ठ मानते थे और बिहारी ऊहापद्धति के चमत्कारी कवि हैं अतः उनका प्रभाव ऊहात्मक शैली पर पड़ना स्वाभाविक है।

> दाबि दाबि छाती पाती लिखन लगायौ सबै
> ब्यौंत लिखिबै को पै न कोऊ करि जात है।
> कहै रतनाकार फुरति नाहिं बात कछु
> हाथ धर्‌यौ ही तल थहरि थरि जात है।
> ऊधौ के निहोरे फेरि नैकु धीर जौरैं पर
> ऐसो अत ताप को प्रताप भरि जात है।
> सूखि जाती स्याही लेखनि कैं नैकु डक लागैं
> अक लागैं कागद बररि बरि जात है।

रत्नाकर जी ने ब्रजभाषा के शब्दों को रीतिकालीन कवियों की भाँति तोड़ा मरोड़ा और स्वेच्छा से लघु गुरु नहीं किया है। हाँ, शब्दों की घिसाई अवश्य की है। घिसाई से तात्पर्य है शब्द की श्रवणकटुता का परिहार कर उसे श्रुतिमधुर बनाना। जैसे अलक्ष्य को अलच्छ, गुणवाली को गुनीली, निवृत्त को निवरी, स्फुरित को फुरत, प्रत्यक्ष का प्रतच्छ, स्थापन का थापन, भाव का भाय, मक्खियों को मखियाँ, रोदनमयी को रुदंदी, सुस्वरवाला को सुखारी, स्रवण को स्रौन, दृष्टि को दीठि, सचित को सचि, अहमेव को हमेव, ह्रास को हरास, हृदयतल का हीतल आदि शब्दों का रूप गढ़ा है। इसी प्रकार ब्रजभाषा की प्रकृति का ध्यान में रखते हुए कुछ क्रियापद भी बना लिये हैं, जैसे—अनुमान करना को अनुमान, उमंग से भरकर को उमहि, गिराता है का गारै, निहोरा करना का निहोरि, बाहर करने का

बहिराइ, मीलनीलमीलन को मदुराने, शीतल करना को सिराइ आदि क्रियापद बनाये है।

रत्नाकर जी ब्रजभाषा माधुर्य गुण से परिपूर्ण है तीन चार छन्दो मे ओज गुण का भी आभास मिलता है, किन्तु उद्धव शतक का मूल गुण माधुर्य ही है। माधुर्य गुण मे कोमल कान्त पदावली तथा सरस शब्दो का प्रयोग होता है। श्रुतिमधुरता भी उसमे रहती है। अर्थबोध की दृष्टि से माधुर्य गुण वाले छन्द क्लिष्ट नही होते। प्रसाद गुण का पुट देकर रत्नाकर जी ने माधुर्य गुण का सचार किया है। उद्धव शतक मे कवि ने षडऋतु वर्णन को भी स्थान दिया है। बसन्त से शिशिर ऋतु तक छहो ऋतुओ की सुषमा छह कवित्तो मे वर्णित है। यह ऋतु वर्णन माधुर्य गुण से ओत प्रोत है। माधुर्य की जैसी छटा इस ऋतु वर्णन मे है वैसी रीतिकालीन कवि सेनापति और पद्माकर को छोडकर किसी अन्य कवि मे नही मिलती। यदि रीति और वृत्ति की दृष्टि से उद्धव शतक की भाषा पर विचार किया जाय तो यह वैदर्भी रीति के अन्तर्गत स्थान पाएगी। वैदर्भी रीति मे भाषा ललित और कोमल होने के साथ मसृण और स्निग्ध शब्द युक्त होनी चाहिए। उद्धव शतक की भाषा इसी प्रकार की है।

सक्षेप मे, उद्धव शतक की भाषा माधुर्य गुण समन्वित, व्याकरणानुमोदित, लोक व्यवहार की दृष्टि से प्रयोगानुकूल एव सुव्यवस्थित है। ऐसी ललित कोमल कान्त पदावली वाली ब्रजभाषा आधुनिक युग मे किसी अन्य कवि ने नही लिखी। रीतिकाल मे घनानन्द, पद्माकर और बिहारी मे ऐसी मधुर भाषा लक्षित की जा सकती है। रत्नाकर जी का प्रिय कवि बिहारी था। बिहारी की समास शैली पर वे मुग्ध थे। बिहारी के शब्द चयन को आदर्श मानते थे। इसी कारण कही कही बिहारी सतसई के दोहो की झलक उनकी रचनाओ मे मिल जाती है। ब्रजभाषा के निकष पर तो रत्नाकर जी आधुनिक काल मे बेजोड है।

०००

८

उद्धव-शतक मे रस योजना

उद्धव-शतक एक मुक्तक काव्य है जिसका प्रत्येक छन्द स्वतन्त्र है अत समग्र रूप से रस योजना का निर्धारण करना और निर्णयात्मक मत व्यक्त करना सरल नही है। यदि छन्दो के प्रतिपाद्य को अलग-अलग करके निर्णय किया जाय तो दो प्रकार के छन्द इस काव्य मे उपलब्ध होते हैं। अधिकाश छन्द गोपियो के कृष्ण प्रेम और विरहानुभूति से परिपूर्ण होने के कारण विप्रलभ शृगार के अन्तर्गत रखे जा सकते हैं। दूसरी कोटि मे छन्द वे है जिनमें निर्गुण भक्ति का प्रतिपादन है। यदि भक्ति को रस माना जाय तो इन छन्दो को भक्ति रस के अन्तर्गत परिगणित किया जाएगा। इस प्रकार उद्धव शतक की रस योजना का विश्लेषण विवेचन दोनो रसो के आधार पर करना उचित है।

विप्रलभ शृगार का शास्त्रीय दृष्टि से विवेचन सस्कृत के आचार्यों ने विस्तार पूर्वक किया है। मम्मटाचार्य के मतानुसार विप्रलभ शृगार के पाच भेद हैं। अभिलाषा-हेतुक, ईर्ष्या-हेतुक, विरह हेतुक, प्रवास हेतुक और शाप हेतुक। (अभिलाषा विरहेर्ष्याप्रवासशाप हेतुक इति पच विध)। रत्नाकर जी ने उद्धव शतक मे विप्रलभ शृगार का वर्णन अभिलाष, विरह और प्रवास परक किया है। ईर्ष्या के लिए विशेष स्थान नही है। पाँच सात छन्दो मे कुब्जा प्रेम की बात अवश्य आई है, उसे ईर्ष्याहेतुक विप्रलभ के अन्तर्गत रखा जा सकता है। शापहेतुक विप्रलभ का उद्धव शतक मे कोई सदर्भ नही है। विप्रलभ शृगार मे विरही जन की दस अवस्थाए स्वीकार की जाती है। अभिलाषा, चिन्ता स्मरण, उद्वेग, गुण कथन, प्रलाप, उन्माद, व्याधि, जडता तथा मरण। इन दस दशाओ मे से पाच का स्पष्ट रूप से उद्धव शतक मे वर्णन है। उन्माद, व्याधि, जडता, प्रलाप और मरण दशा का वर्णन नही मिलता। सचारियो मे औत्सुक्य, चिन्ता, शका, प्रबोध और मद का वर्णन है। इस प्रकार विप्रलभ शृगार की स्थिति पूर्ण मे सम्पन्न हो जाती है।

विप्रलभ शृगार की पूर्णता के लिए विरही व्यक्ति के मन मे प्रबल प्रेमावेग के होने पर छटपटाहट होना आवश्यक है। प्रिय समागम के अभाव मे विरहीजन

की मनोदशा व्याकुल-व्यथित स्थिति मे होती है। उद्धव-शतक मे प्रवास हेतुक विरह है। कृष्ण प्रवास मे मथुरा गये हुए है। गोपिया गोकुल मे प्रतीक्षारत हैं। चिन्ता और औत्सुक्य से वे पीडित है। उधर श्रीकृष्ण भी पिंजरे मे बन्द तोने के मुख से राधा का नाम सुनकर व्याकुल है। उन्हे गोपियो का स्मरण हो आता है, अतीत की स्मृतियो से उनका मन विभोर हो उठता है, गला भर आता है, वाणी अवरुद्ध हो जाती है मन की बात स्पष्टत कहने की शक्ति उनमे नही रहती और वे हिचकियाँ लेकर अपनी विरह व्यथा उद्धव के समक्ष प्रकट करते है

विरह बिथा की कथा अकथ अथाह महा
कहत बनै न जो प्रवीन सुकवीनि सौं।
कहै रतनाकर बुझावन लगे ज्यौं कान्ह
ऊधौ कौ कहन हेतु ब्रज जुवतीनी सौं।
गहबरि आयौ गरौ भभरि अचानक त्यौं
प्रेम पर्‌यो चपल चुचाइ पुतरीनि सौं।
नैकु कही बैननि, अनेक कही नैननि सौं
रही सही सोऊ कहि दीनी हिचकीनि सौं।

श्रीकृष्ण ने ब्रज मे निवास करते हुए गोपिया के साथ अनेक प्रकार की लीलाएँ की थी। गोकुल की गलियो मे दधि मक्खन के लिए छेड़खानी की थी। नाच गान किया था। बासुरी बजा कर गोपियो का मनोविनोद किया था। व सब दृश्य प्रवास के समय उन्हे रह रहकर याद आने लगे। उनके स्मृति-पटल पर ब्रज विनोद सहसा उभर आया और स्मरण म विभोर होकर उन्होने उद्धव से कहा

गोकुल की गैल-गैल, गैल-गैल ग्वालिन की
गो रस कै काज लाज-बस कै बहाइबो।
कहै रतनाकर रिझाइबो नवेलिनि कौं
गाइबो गवाइबो और नाचिबो नचाइबो।
कीबो स्रमहार मनुहार कै बिबिध विधि
मोहिनी मृदुल मजु बासुरी बजाइबो।
ऊधौ सुख सम्पति समाज ब्रज मडल के
भूलें हूँ न भूलै भूलें हमको भुलाइबो।

उद्धव के ब्रज आगमन का समाचार सुनकर गोपियाँ आनन्द विभोर होकर अपने घरो मे भाग खडी हुई और उद्धव के पास पहुँच गई। उद्धव न उन्हे बताया कि मैं कृष्ण का सदेश पत्र लेकर आया हूँ। यह सुनते ही गोपियो ने जो औत्सुक्य प्रकट किया वह रत्नाकर जी की वाणी म इस प्रकार है

उझकि उझकि पद-कजनि के पजनि पै
पेखि-पेखि पाती छाती छोहनि छबै लगीं।

हमको लिख्यौ है कहा, हमको लिख्यौ है कहा
हमको लिख्यौ है कहा, कहन सब लगी ।।

गोपिया के मन म शका है कि कृष्ण मथुरा म बस कर हम भूल गय है। शायद कृष्ण का मन कुब्जा म रम गया है। इसी कारण कृष्ण हमे भूल गय है। इस सदेह-शका के वातावरण मे गोपियो का मन ईर्ष्या स भर जाता है। ईर्ष्या हेतुक विप्रलभ क साथ असूया सचारी भाव उनक मन म आता है। तीन चार छदो मे कवि ने ईर्ष्या भाव का वणन किया है। ईर्ष्या का विषय कुब्जा है

सुनी गुनी समझी तिहारी चतुराई जिती
काहू की पढाइ मतिताई कुबरी की हैं।
कहै रतनकर त्रिकाल हू त्रिलोक हू मैं
आन अननैकु ना त्रिदव की कही की है।
कहहि प्रतीति प्रीति नीति हू त्रिवाचा बाधि
ऊधो सॉच मन की हिय की परजी की है।
वे तो है हमार ही हमार ही हमारे ही और
हम उनही की उनही की उनही की है ।।

दूसर छद मे पुन कुब्जा का लाच्छन व्यक्त किया है और कहा है और ऐसा प्रतीत होता है कि उद्धव तुम्ह कृष्ण न नहीं कुबरी ने भेजा है—

रसिक सिरामनि को नाम बदनाम करो
मरी जान ऊधो कूर कुबरी पठाए है।

तीसर छद म भी कूबरी के प्रति उपालभ की चर्चा करत हुए गोपियो ने असूया का सकत किया है—

याही साच माहि हम होती कूबरी क कहा
कूबरी ह्न होती न पतोह नदराय की।'

यदि इन छदो को विप्रलभ शृ गार की कसौटी पर कसा जाय तो यही प्रतीत होगा कि गोपिया विरहानुभूति स पीडित आ श्रय ह और कृष्ण (नायक) उनके प्रेम के आलम्बन ह। नायक और नायिका के स्तर पर इस विप्रलभ शृ गार को भली-भाँति समझा जा सकता है। गोपियो की वाणी उपालभ की है और उनकी वेदना वियोगजनित दग्ध हृदय की ह। विरह वणन म प्राय ऊहात्मक उक्तियो का कविगण प्रयोग करत है। ऊहा का प्रयोग अतिशयोक्ति व्यापार हा है। किंतु ऊहात्मक उक्ति मे कथन-सौ दय अपेक्षित है जो अतिशयोक्ति क लिए अनिवाय नहीं है। रत्नाकर जी ने गोपिया के विरह वणन म ऊहात्मक-पद्धति का भी यत्र-तत्र प्रयोग किया है किंतु यह रीतिकालीन कवियो के समान प्रचुर मात्रा म नही है। ऊहा का विरल प्रयोग ही उद्धव शतक म मिलता है। उद्धव गोपियो से मिलकर मथुरा वापस जाने लग तब गोपिया ने अपना प्रेम पत्र उनके हाथ कृष्ण

के पास भेजने का उपक्रम किया किन्तु विरहताप के कारण स्याही सूख गई, लेखनी को डंक लग गया और अक्षर बनते बनते कागज ताप से झुलस गया। यह वर्णन ऊहा का उदाहरण है। बिहारी में तो ऐसे बीसियों प्रयोग मिलते हैं। रत्नाकर जी ने बड़ी सूझ बूझ से इस ऊहा को पत्र-लेखन संदर्भ में प्रयुक्त किया है

ऊधौ के निहारैं फेरि नैंकु धीर जौरैं पर
एती अंग ताप की प्रताप भरि जात है।
सूखि जात स्याही लेखनी कैं नैंकु डंक लागैं
अंक लागैं कागद बररि बरि जात है।

उपर्युक्त वर्णना से यह स्पष्ट हो जाता है कि रत्नाकर जी ने उद्धव शतक में विप्रलंभ शृंगार को उसके पूरे परिवेश में चित्रित किया है। श्रीकृष्ण और गोपियां दोनों ही प्रेमातिरेक में डूबे हैं और दोनों को समान रूप में वियोग व्यथा साल रही है। इस वियोग-व्यथा ने विप्रलंभ शृंगार को पूरा आयाम देकर काव्य को शृंगाररस में निमज्जित कर दिया है।

दूसरी ओर जो विद्वान भक्ति को भाव न मानकर रस मानते हैं और उसके विभाव, अनुभाव और संचारी आदि भी स्वीकार करते हैं, वे उद्धव शतक में भक्ति रस की चर्चा करते हैं। चर्चा से अभिप्राय संकेत से ही है। व्यवस्थित रूप से किसी विद्वान ने उद्धव शतक में भक्ति-रस की स्थापना नहीं की है। श्रीकृष्ण गोपियों के आराध्य हैं, पूज्य हैं, इष्टदेव हैं। दूसरे शब्दों में श्रीकृष्ण विष्णु के अवतार हैं। गोपियां जीवात्मा हैं। जीवात्मा का प्रयत्न ईश्वर प्राप्ति द्वारा मुक्ति कामना है। श्रीकृष्ण को भक्ति रस आलम्बन, गोपियों को आश्रय तथा स्मरण, कीर्तन, गुणश्रवण नामस्मरण आदि को संचारी मानकर भक्ति रस का संकेत किया जाता है। इस सम्बन्ध में विचारणीय यह है कि गोपियां जिस श्रीकृष्ण को अपनी भक्ति भावना का आलम्बन बनाती हैं वह सगुण साकार है निर्गुण, निराकार नहीं। उद्धव जिस परब्रह्म की चर्चा भक्ति संदर्भ में करते हैं, वह रूप रेखाविहीन निर्गुण निराकार अद्वैत ब्रह्म है। इस प्रकार भक्ति रस मानने वाले पाठक के समक्ष भगवान के दो रूप उपस्थित होते होते हैं। प्रश्न है कि उद्धव शतक में यदि भक्ति रस की स्थापना करनी है तो किस प्रकार के भगवान को स्वीकार किया जाना चाहिए। दो प्रकार की भक्ति पद्धतियों से विरोध होने पर भक्ति रस की स्थापना के संदर्भ में बड़ी उलझन उत्पन्न होगी। इस विवादास्पद विषय के कारण भक्ति रस का पूर्ण परिपाक संभव ही नहीं है, हां भाव रूप में सगुण भक्ति को उद्धव शतक में स्वीकार किया गया है भक्तिरस के रूप में उसकी पूर्ण प्रतिष्ठा नहीं है। निर्गुण और सगुण दोनों प्रकार के इष्टदेव (ब्रह्म और विष्णु) इसमें वर्णित हैं। गोपियाँ अपने सगुण ईश्वर का वर्णन करते समय सप्रमाण सतर्क सयुक्तिक पद्धति से निर्गुण ब्रह्म का खंडन करती हैं ऐसी स्थिति में भक्ति रस की स्थापना संभव नहीं है। अतः उद्धव शतक को विप्रलंभ शृंगार का काव्य ही मानना अधिक युक्तिसंगत, तर्क प्रमाण सम्मत और बुद्धिगम्य प्रतीत होता है।

०००

उद्धव-शतक का काव्य-रूप

उद्धव शतक के काव्य रूप के सम्बन्ध म किसी प्रकार के विवाद की सभावना नही है। यह एक मुक्तक कोटि का काव्य है। किन्तु मुक्तक का कौन-सा रूप इसमे कवि ने स्वीकार किया है यही विचारणीय है। मुक्तक को सस्कृत के आचार्यों ने इतर की अपेक्षा न रखने वाला काव्य रूप ठहराया है—'मुक्तक मितरानपेक्षमेक सुभाषितम्।' इसमे सुभाषित का अनुबध परवर्ती काल मे अनिवाय नही रहा। दूसरी परिभाषा म सुभाषित की शत नही है—'मुक्तक वाक्यान्तर निरपेक्षोय श्लोक' अर्थात वाक्यान्तर निरपक्ष श्लोक ही मुक्तक है। मुक्तक कुलक कोश सघात इति तादश' भी मुक्तक की परिभाषा है। आनन्दवधन न ध्वन्यालोक मे मुक्तक के सम्बन्ध म विचार व्यक्त करत हुए कहा है कि 'मुक्तको मे रस निबधन म आग्रहशील कवि के लिए रसाश्रित औचित्य नियामक तत्व है। प्रबध काव्य के समान मुक्तको म भी रस का अभिनिवश करने वाले कवि पाय जाते ह। कविवर रत्नाकर इसी वग मे कवि है। उन्हाने रसाभिनिवश का अपने उद्धव शतक म आद्योपान्त ध्यान रखा है।

मुक्तक की उपयुक्त परिभाषाओ को ध्यान म रखत हुए यदि हम मुक्तक के तत्वो का सधान करें ता हम चार पक्ष लक्षित हागे। मुक्तक अन्यनिरपेक्ष होता है, अनिबद्ध अथात कथा प्रबध म रहित हाता है रस चवण म रस निबधन के कारण चमत्कारपूण होना है। तथा छन्द विधान की दृष्टि से समान अर्थात् एक ही छन्द म निबद्ध होता है। आचाय रामचन्द्र शुक्ल न मुक्तक को पुष्पो का सुव्यवस्थित गुलदस्ता कहा है। प्रबध काव्य विस्तत वनस्थली है। मुक्तक म एक ही मार्मिक, रमणीय खडदश्य या कथ्य का वणन हाता है। विषय की दष्टि से कवि सुन्दर एव मनोहारी कथा प्रबध के किसी अश को भी चुन सकता है किन्तु वह खड काव्य के सदश कथा सम्बद्ध नही होता। मुक्तक का छन्द कुछ क्षणो के लिए पाठक के मन म आनन्द और चमत्कार उत्पन्न कर मन को रस म निमज्जित करने वाला हाता है।

राजशेखर ने मुक्तक के पाँच भेद स्वीकार किये हैं। शुद्ध, चित्र, कथोत्थ, संविधानक्रम, आख्यानकवान। उद्धव शतक के मुक्तक रूप पर विचार करते समय चित्र और आख्यानकवान का प्रभाव देखा जा सकता है। पाश्चात्य साहित्य में मुक्तक के समशील लिरिक पोइट्री को माना जाता है। लिरिक पोइट्री यद्यपि मुक्तक काव्य को सम्पूर्णतः नहीं समेटती फिर भी गेयता, स्वछंदता, निरपेक्षता आदि तत्वों में एक सीमा तक यह समशील कही जा सकती है। लिरिक-कविता, विचार-कविता (रिफ्लेक्टिव) और भावात्मक कविता (इमोशनल) होती है। यदि मुक्तक के मोटे तौर पर भेद किये जाएं तो विशुद्ध मुक्तक, संघात मुक्तक और प्रबंध मुक्तक तीन प्रमुख भेद होंगे। उद्धव शतक को प्रबंध मुक्तक के अंतर्गत रखा जा सकता है। लिरिक पोइट्री में यह विचारात्मक कविता के अधिक समीप है।

उद्धव शतक के काव्य रूप पर विचार करते हुए डा० रमाशंकर शुक्ल रसाल ने लिखा है कि 'उद्धव शतक' एक चित्रोपम काव्य है जिसमें प्रबंधात्मक मुक्तक का प्राधान्य है और जिसमें अभिधा लक्षणा तथा व्यंजना तीनों का अच्छा उत्कर्ष मिलता है। सरसता, रसात्मकता, अर्थ गौरव और ललित मंजुल पदावली की मधुरता तो कूट कूट कर भरी हुई है।' इसमें प्रबंधात्मकता तथा चित्रोपमता दो शब्द ध्यातव्य हैं। चित्रोपम कोई काव्यरूप नहीं है। मुक्तक में ही चित्रोपम सौंदर्य सन्निहित रहता है। इस काव्य को प्रबंध मुक्तक की कोटि में रखने के लिए तीन तर्क दिये जा सकते हैं। इन्हीं तीन तर्क प्रमाणों से हम उद्धव शतक को प्रबंध मुक्तक ठहरा सकते हैं। पहला तत्व है प्रत्येक छंद में स्वतंत्र होने पर भी सूक्ष्म कथासूत्र का समावेश। भागवत पुराण की कथा का अति सूक्ष्म-सा तंतु प्रत्येक छंद में व्याप्त है जो कृष्ण गोपी विरह के प्रसंग को जोड़कर कथा का रूप दे देता है। दूसरा तत्व है सम्वाद। सम्वाद का प्रत्यक्ष रूप उत्तर प्रत्युत्तर का न होने पर भी छंद में ही गोपी और उद्धव के वार्तालाप की झांकी पाठक को मिल जाती है। गोपियां अपनी बात जिस शैली से कहती हैं उसमें सम्वाद या कथोप कथन का पुट बना रहता है जो प्रबंध काव्य का एक तत्व है। तीसरा तत्व है विचार जो सगुण निर्गुण विवेचन में उभरता है। विचारतत्व मुक्तक में भी रहता है किन्तु प्रत्येक छंद में विचार गुम्फित होकर अगले छंद की योजना में भी बना रहे तो प्रबंधात्मकता का समावेश हो जाता है। उद्धव शतक में मुक्तक परम्परा का पूर्ण निर्वाह होने के साथ इन तीनों तत्वों का समावेश उसे प्रबंध मुक्तक की कोटि में स्थान दिला देता है।

कुछ समीक्षकों ने उद्धव शतक को उपालंभ काव्य लिखा है। वास्तव में उपालंभ काव्य रूप नहीं है। यह तो कथन शैली है। उद्धव शतक में आद्योपांत उपालंभ नहीं है। यत्र-तत्र कुछ प्रसंगों में गोपियां कृष्ण के प्रति उपालंभ की भाषा

का प्रयोग करती है। उपालभ मे कुब्जा की चर्चा भी कर देती है। यह सब उपालभ की कथन शैली मात्र है। इसे काव्य रूप ठहराना असगत और अनुचित है। किसी भी शास्त्र म उपालभ को काव्य रूप या काव्य विधा नही माना गया है। अत उद्धव शतक को उपालभ काव्य कहना शास्त्र सम्मत नही है। यह भी ध्यातव्य है कि उद्धव शतक म भ्रमर मधुकर, मधुप आदि शब्दो का प्रयोग गोपियाँ नही करती, वे सीधा उपालभ देती है। मधुप शब्द का प्रयोग केवल एक बार हुआ है।

उद्धव शतक के ११७ छदो मे कवि ने मुख्यत कृष्ण गोपी विरह को उद्धव के द्वारा व्यजित किया है। उद्धव दूत है, कृष्ण के सदेशवाहक है किन्तु उनका अपना भी दर्शन है जो ज्ञान और योग से प्रेरित है। उसका आधार निर्गुण ब्रह्म की उपासना है। अपनी निर्गुणोपासना को सतर्क, सप्रमाण प्रस्तुत करने म उद्धव ने कोई कमी नही की है। यह स्थापना कथ्य की दृष्टि से प्रबध का ताना बाना बुनती है गोपिया सगुणोपासक है। उनके पास भी अपना कथ्य है जो तर्क प्रमाण की भित्ती पर सुदृढ है, फलत दोनो के बीच सवाद या वाद विवाद की सृष्टि हो जाती है। इसलिए उद्धव शतक शुद्ध मुक्तक नही रह पाता। उसका आधार उपजीव्य भागवत पुराण का एक सदर्भ हो जाता है जो न तो पूर्ण प्रबध काव्य है और न खडकाव्य। अत मुक्तक काव्य म ही प्रबध सदर्भ का समाहार करके कविवर रत्नाकर ने उद्धव शतक की रचना की है।

छद विधान छन्द की समानता भी उद्धव शतक मे बनी रही है। घनाक्षरी (कवित्त छन्द) म ही उद्धव-शतक लिखा गया है। यह छन्द शृगार और वीर दो रसो म प्राय प्रयुक्त होता रहा है। यह वर्णिक वृत्त है इसमे १६ और १५ पर विराम देते हुए ३१ वर्ण लिखे जाते हैं, कवित्त छन्द म गति पर कवि को विशेष ध्यान देना होता है। गति और लय दोनो को दृष्टि म रखकर जब कवित्त की रचना की जाती है तो कवित्त सुपाठ्य बनता है। रीतिकालीन कवियो ने कवित्त छन्द को खूब परिमार्जित किया था। देव, मतिराम, घनानन्द, ठाकुर और पद्माकर कवित्त लिखने मे सफल हुए ह। रीतिकाल के बाद सर्वश्रेष्ठ कवित्त छद की रचना रत्नाकर जी ने ही की है। उद्धव शतक इन सुन्दर कवित्तो का अप्रतिम उदाहरण है। रत्नाकर जी ने गति, यति लय और वर्ण चयन की साधना की थी। उनके छन्द सरल शैली म, प्राजल भाषा म शब्द चयन की चारुता म और पदबध के सौष्ठव म अनूठे है। रत्नाकर जी के बाद किसी अन्य कवि ने घनाक्षरी कवित्त का ऐसा मनोहारी प्रयोग नही किया। रत्नाकर जी ने इस छन्द को अमरत्व प्रदान किया है।

००

१०

उद्धव-शतक मे अलकार-योजना

काव्य को अलकृत करने वाले उपादान के रूप मे जिन तत्वों की गणना की जाती है उनमे अलकारो का विशेष स्थान है। अलकार का सस्कृत काव्य-शास्त्र म महत्वपूर्ण स्थान मिलने से एक सम्प्रदाय ही 'अलकार सम्प्रदाय' बन गया जिसम भामह, दडी, वामन और रुद्रट नामक चार आचार्यों का प्रमुख स्थान है। शब्द और अर्थ के वचित्र्य को अलकार मानने वाले आचाय भामह ने इस सम्प्रदाय को सर्वोपरि माना है। दडी के मत म काव्य को सौंदर्य प्रदान करने वाले धर्म ही अलकार है। वामन के मत मे अलकार द्वारा ही काव्य ग्राह्य होता है और सौंदय ही अलकार है। रुद्रट भी कथन के प्रकार विशेष को अलकार मानते है। अलकार के इस महत्व को हिंदी के कुछ रीतिकालीन कवियो न भी यथावत स्वीकार किया है। आधुनिक युग के समीक्षक आचाय रामचन्द्र शुक्ल ने अलकार की परिभाषा इस प्रकार दी है 'भावो का उत्कर्ष दिखाने और वस्तुओ के रूप गुण और क्रिया का अधिक तीव्र अनुभव कराने म कभी कभी सहायक होने वाली युक्ति अलकार है।' वास्तव म अलकार बाह्य एव आभ्यन्तर शोभा विधायक काव्य तत्व है जिसके दो मुख्य भेद है, शब्दालकार तथा अर्थालकार।

उद्धव शतक म रत्नाकर जी न अलकार का प्रयोग काव्य भाषा का उत्कर्ष सिद्ध करने और भावो की तीव्रता के लिए ही किया है। रीतिकालीन कवियो की भाति अलकारो को ऊपर से लादा नही गया है। जयन्त की भाति रत्नाकर जी अलकार को काव्य का नित्यधर्म नही मानते। आचाय मम्मट की भांति रस भाव आदि के उत्कर्ष के लिए अलकारो का अपने काव्य म प्रयोग किया है। शब्दालकार तथा अर्थालकार दोनो प्रकार के सुदर अलकार उद्धव शतक म प्रचुर मात्रा मे उपलब्ध होते है। शब्दालकारो म अनुप्रास तो रत्नाकर जी की रचनाओ म अनायास नर्सगिक भाषा के रूप म समाया रहता ह। बिना किसी आयास के अनुप्रास का प्रवाह इनका स्वभाव है। अनुप्रास के लिए कोश का सधान करना और शब्दो का चयन करना रत्नाकर जी के स्वभाव म नही है। सिद्ध कवि के रूप

मे अनुप्रास पूर्ण शब्द उनकी रचना मे स्वत दौडे चले आते है। वाणी उनके वश मे होकर उनके पीछे चलती है, भाषा उनकी वशवर्तिनी होकर काव्य मे स्थान पाती है। अनुप्रास, यमक, श्लेष, वीप्सा, पुनरुक्तिप्रकाश आदि अलकार उद्धव शतक म प्रचुर मात्रा म मिलते है—

उद्धव शतक का मगलाचरण का पद अलकार प्रयोग की दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण है। इस पद म शब्दालकार और अर्थालकार दोनो का कवि ने प्रयोग किया है। कवित्त के प्रथम चरण म अनुप्रास की छटा है

जासों जाति विषय विषाद की बिवाई बेगि
चोप चिकनाई चित्त चारु गहि ज्यौ करै
+ + + +
जयति जसौ मति के लाडिले गुपाल, जन
रावरी कृपा सौं सो सनेह सेंहियौ करै।

इसी पद म सनेह शब्द मे श्लेष भी स्पष्टत लक्षित किया जा सकता है। छेकानुप्रास और वृत्यनुप्रास तो पूरे पद म अनुस्यूत है। दूसरे पद म भी इसी प्रकार अनुप्रास और यमक की छटा है। स्मरण नामक अर्थालकार भी है।

"हात जमुना मे जल जात एक देख्यो जात
जाकी अध अरध अधिक मुरझायो है।
कहै रत्नाकर उमहि गहि स्याम ताहि
बास बासना सौ नैकु नासिक लगायो है।

यदि उद्धव शतक के समस्त पदो पर अनुप्रास, श्लेष, यमक, वीप्सा आदि शब्दालकारो की दृष्टि म विचार किया जाय तो इन अलकारो का कोई न-कोई रूप प्राय प्रत्यक पद म लक्षित किया जा सकता है। निम्नलिखित कवित्त म अनुप्रास की छटा द्रष्टव्य है।

कोऊ चले कापि सग कोऊ उर चापि चले
कोऊ चले कछुक अलापि हरबल मे।
कहै रतनाकर सुदेश तजि कोऊ चले
कोऊ चले कहत सदेस अविरल मे।
आस चले काहू के सुकाहू मे उसास चले
काहू के हिय पै चद हास चल हल से।
ऊधव के चलत चला चल चलो यो चल
अचल चल औ अचल हू भय चल से॥

रत्नाकर जी का प्रिय अर्थालकार साग रूपक है। यो तो रूपक के सभी भेद इस काव्य म मिलते है किन्तु साग रूपको की छटा कवि की कल्पना शक्ति का प्रमाण प्रस्तुत करती है। कृष्ण अपनी व्यथा का वर्णन करते हुए उद्धव स कहते है कि

मेरे मन में वाल्यकाल की मधुर स्मृति दिन रात काँटे जैसी कसकती रहती है। काँटे की कसक का सांग रूपक में रत्नाकर जी ने इस प्रकार प्रस्तुत किया है। काँटा निकालने के लिए चिमटी काम में आती है, यहाँ चाह को चिमटी बताया है। आक का दूध लगाकर काँटा निकाला जाता है यहाँ धैर्य ही आक-दूध है।

चलत न चार्यौ भाँति कोटिनि बिचार्यौ तऊ
दाबि-दाबि हार्यौ पै न टार्यौ टसकत है।
परम गहीली बसुदेव-देवकी की मिली
चाह चिमटी हूँ सौं न खैंचौ खसकत है।
कढ़त न क्यौं हूँ हाय बिथके उपाय सबै
धीर आक छीर हूँ न धारैं धसकत है।
ऊधौ ब्रजगाम मैं बिलोगिनि कौ ध्यान धस्यौ
निसि दिन काँटे लौं करेजौ कसकत है।

इस कवित्त में रूपक भी है, यमक भी है व्यतिरेक भी है अनुप्रास और पद मैत्री तो रत्नाकर जी की वाणी की शोभा है। इस प्रकार यह श्रेष्ठ सांग रूपक है। इस रूपक में व्रजसंस्कृति की झलक काँटा निकालने की क्रिया में है। ग्वाल-बाल जंगल में घूमते हुए काँटा लगने पर इसी क्रिया का उपयोग करते हैं।

इसी प्रकार सांग रूपक का दूसरा सुन्दर उदाहरण है जिसमें श्रीकृष्ण को राधा के मुखचन्द्र का ध्यान आते ही उनके हृदय में प्रेम का समुद्र उमड़ने लगता है झंझावात उठ खड़ा होता है और विचार रूपी केवट परिश्रम करके हार जाता है।

केवट बिचार को बिचारौ पचिहारि जात
होत गुनपाल ततकाल नभगत है।
करत गभीर धीर लंगर न काम कछू
मन को जहाज डगि डूबन लगत है।

एक ही पद में अनेक अलंकारों की छटा तो रत्नाकर जी की शैली का प्रसाधन है। यदि ऐसे कवित्त संकलित किये जाएँ तो तीन दर्जन से अधिक होंगे। एक पद नीचे दे रहे हैं जिसमें रूपक अलंकार के साथ रूपक, दुहरी दीपक, असंगति और अनुप्रास एक साथ विद्यमान हैं

सीलसनी सुरुचि सु बात चलै पूरब की
और ओप उमगी दृगनि मिदुराने तैं।
+ + +
नीरकौ प्रवाह कान्ह नैननि के तीर बह्यौ
धीर बह्यौ ऊधौ उर अचल रसाने तैं। (१२)

सांग रूपक की एक अन्य उदाहरण "हेत खेत माहिं खोद खाई सुद्ध स्वारथ की, प्रेम तृन गोपि राख्यौ तापै गमनौ नहीं" पद में है। यह हाथी को फँसाने की क्रिया

के साथ कृष्ण को व्रजवासियो द्वारा अनुराग के जाल मे फसाने का वणन है। समस्त पद मे हाथी पकडने की क्रियाए भी है और कृष्ण प्रेम का भी वणन है। इसी पद म अनुप्रास की छटा भी देखी जा सकती है।

वारनि कितेक तुम्हे बारन कितेव करै
बारन उबारन ह्वै वाम बनो नही।

साग रूपक, यमक, परिकराकुर और अनुप्रास का इस पद म अच्छा प्रयोग कवि ने किया है।

उद्धव शतक का चित्रोपम काव्य कहने वाले समीक्षक इस काव्य मे अनेक एसे स्थल देखते है जिनम वस्तु या भाव को कवि ने शब्द के माध्यम से साक्षात मूत रूप देकर प्रस्तुत किया है। कृष्ण की विरह-व्यथा को कवि ने यह कहकर मूत किया है—'विरह विथा की कथा अकथ अथाहमही—और प्रेम पर यौ चपल चुचाइ पुतरीन सौं' आदि द्वारा जो चित्र खडा किया है वह अदभुत है। यह चित्रोपम तो शब्द साधना द्वारा ही सभव हो सकती है।

पुनरुक्ति, वीप्सा, यमक और श्लेष के तो बीसियो सुदर उदाहरण उद्धव शतक मे भरे पडे है। विरोधाभास काव्यलिंग स्मरण, विषम, दृष्टात, लोकोक्ति, परिकराकुर, उत्प्रेक्षा, उपमा आदि अनेक अलकारो का भडार है उद्धव शतक। यदि उद्धव शतक के प्रत्येक कवित्त मे अलकार का अनुसधान किया जाय तो कोई भी कवित्त ऐसा नहीं मिलगा जिसम शब्दालकार अथवा अर्थालकार का सौदय लक्षित न किया जा सके।

शब्दालकार की योजना म वण मत्री और शब्द मत्री पर भी रत्नाकर जी ने पूरा ध्यान रखा है। एक-एक वण और शब्द को तौल कर उसके साथ मेल रखने वाला उसी वजन का वणन या शब्द रखना रत्नाकर जी की शब्द-योजना का चमत्कार है। उदाहरणाथ—

पाचो तत्व माहि एक तत्व ही की सत्ता सत्य
या ही तत्व ज्ञान को महत्व स्तुति गायौ है।

इसी प्रकार दूसरा उदाहरण है—

कहै रत्नाकर न आए मुख बैन नैन
नीर भरि ल्याए भए सकुचि सिहाने से।
सूखे से स्रमे से सकबके से थके
भूले से भ्रमे से भभरे से भकुवाने से।

सक्षेप म उद्धव शतक का अनुशीलन इस तथ्य को सप्रमाण सिद्ध करता है कि रत्नाकर जी की अप्रस्तुत योजना बाहर से लादी हुई कृत्रिम अलकार योजना नही है। उनकी अप्रस्तुत योजना भाव और भाषा के साथ तालमेल रखती हुई स्वत स्फूत योजना है जो उनके काव्य को चमत्कारपूण और गुरुजिपूण बनाने म

सफल है। रीतिकाल के तीन चार कवि ही ऐसे हैं जो रत्नाकर जी की अलकार योजना के साथ एक श्रेणी में रखे जा सकते हैं। यदि पद मैत्री के लिए, लोकोक्ति और मुहावरे के लिए इनकी कविता पर ध्यान दिया जाय तो आश्चर्य होता है कि रत्नाकर जी ने कितने सहज रूप में लोकोक्तियों को अपने काव्य में स्थान दे दिया है।

कठिन कसाले परे लाले परे प्रान के।
+ + +
छार ह्वै गई धौं बिरहानल की झार मे।
+ + +
ज्ञान गयौ सहित गुमान गिरि गाठी त।
+ + +
मानी बहू राधे आधे कानि सुनि पावै मा।
+ + +
जहै तीन-तेरह तिहारी तीन-पाँच ह्वै।
+ + +
आपु कहै उनके गुरु है कियौ चेला है।
+ + +
पारी वाह तरनी हमारी मझधार लै।
+ + +
लौटि-लौटि यातमो बवडर बनावत क्यो।
+ + +
ऊधौ कहिवे की बस बात रहि जायगी।
+ + +
बात की मिठाई मे लुनाई ल्याइ ल्याए हैं।
+ + +
ऊधौ हाय हमकौ बयार भखिबो कहौ।

यदि मुहावरे और लोकोक्तियो का सकलन किया जाय तो लगभग चालीस तक की सख्या मे उपलब्ध हैं।

अप्रस्तुत योजना के सबध म रत्नाकर जी की बहुज्ञता की चर्चा करना भी हम आवश्यक समझते हैं। श्लेष, यमक विभावना, अत्युक्ति, अतिशयोक्ति, असगति आदि अलकारो का प्रयोग करते समय रत्नाकर जी ने अपने विविध विषयो के अर्जित ज्ञान का भी उपयोग किया है। रत्नाकर जी ने दर्शनशास्त्र, आयुर्वेद शास्त्र गणित-ज्योतिषशास्त्र, योगदर्शन, तथा विज्ञान को अपनी कविता म स्थान देकर अपनी बहुज्ञता का अच्छा परिचय दिया है।

आयुर्वेद म विषम ज्वर की चिकित्सा के लिए सुदर्शन चूर्ण का प्रयोग लाभप्रद माना जाता है। उद्धव शतक के कवित्त सख्या ३४ म इस ज्वर का वर्णन गोपिया के विरह प्रसग म कवि ने किया है और श्लेष द्वारा इसका वर्णन है। गोपिया कहती है कि हम तो वियोग रूपी विषम ज्वर से पीडित हैं, हम सुदर्शन (श्रीकृष्ण दर्शन) चाहिए। मालूम नही यह किस रोग की दवाई हमारे लिए भेजी है। वैद्यक मे पारे का भस्म तैयार करने का विधान है। रत्नाकर जी ने इस प्रक्रिया का भी कवित्त सख्या १०१ म वर्णन किया है। प्रेम रसायन बनाने की विधि वैद्यक शास्त्रानुसार ही है। यह पूरा सदर्भ वैद्यक की प्रक्रिया से जुडा। कवित्त सख्या १०४ म इसका पूरा वर्णन है। वेदान्त दर्शन के तो कई उदाहरण उद्धव शतक मे हैं। उद्धव स्वय वेदान्ती निर्गुण मार्गी भक्त थे अत उसके सिद्धान्त प्रतिपादन म उन्होंने इस शास्त्र का पूरा समर्थन किया है। इसी प्रकार विज्ञान के भी सिद्धान्तो का यत्र-तत्र वर्णन है। दर्पण म देखते समय जब स्थान की दूरी होती जाती है तब ऐसा प्रतीत होता है कि मूर्ति मुकुर म धस गई है। यह विज्ञान वार्ता उद्धव शतक म उपलब्ध है

ज्यो-ज्यो बसे जात दूरि दूरि प्रिय प्रान मूरि।
त्यों त्यो धसे जात मन मुकुर हमारे म॥

सक्षेप मे, रत्नाकर जी का जिन विषयो की अच्छी जानकारी थी उनका उन्होने अपनी रचनाओ मे सकेत अवश्य दिया है। द्विवेदी युगीन काव्यधारा को समीक्षका न इतिवृत्तात्मक ठहराया है, अर्थात उस समय की कविता धारा सपाट बयानी और यथातथ्य वर्णन से ऊपर नही उठ सकी थी किन्तु रत्नाकर जी उसी युग म इन दोनो स्थितियो से ऊपर थे। रत्नाकर जी के काव्य को इतिवृत्तात्मक काव्य नहीं कहा जा सकता। वह काव्य की दृष्टि से भक्तिकालीन तथा शैली शिल्प की दृष्टि से रीतिकालीन काव्य के अधिक समीप है। द्विवेदी युग की नैतिकता और आदर्शवादिता का उसम कोई आग्रह नही है। उद्धव शतक इसीलिए प्रौढ शिल्प का परिचय देने वाली श्रेष्ठ काव्यकृति है।

०००

११

आधुनिक-युग मे उद्धव-शतक की प्रासगिकता

आधुनिक युग मे प्रत्येक परम्परावादी रचना के विषय मे यह प्रश्न प्राय उठाया जाता है कि युगबोध की दृष्टि मे उद्धव-शतक जैसी पौराणिक कथावस्तु मूलक रचना की क्या उपयोगिता है। क्या उद्धव शतक का शिल्प-सौष्ठव ही इस कृति को जीवित रखने और ग्रहण करने के लिए पर्याप्त है अथवा इस रचना मे ऐसे भी तत्व हैं जो इस वैज्ञानिक युग मे इस काव्य को मानव-सवेदना के स्तर पर ग्राह्य बनाते है ? यह प्रश्न भक्तिकालीन सूरदास, मीरा, नन्ददास, रसखान तथा रीति काल के देव बिहारी, मतिराम, घनानन्द, पद्माकर आदि कवियो की रचनाओ के विषय मे भी पूछा जा सकता है। वस्तुत कालजयी कृति के सदर्भ मे जब यह प्रश्न उठता है तो वह कवि की समग्र रचनाधर्मिता को स्वीकार कर ही उठता हैं। यदि यह प्रश्न सूरदास की रचनाओ को लेकर पूछा जाय तो लोकरजक पक्ष का आग्रह रखने वाले समीक्षक यही उत्तर देंगे कि भक्ति की सीमा मे रहते हुए कवि ने जो भाव प्रकट किये हैं वे किसी एक कालावधि तक ही सीमित नही है। सूर की भक्ति शाश्वत धर्म से सम्पृक्त है। अर्थात सूर ने अपने आराध्य श्रीकृष्ण की भक्ति के लिए जो पद लिखे है वे आज से पाच सौ वर्ष पहले यदि भक्ति को भगवान के सामीप्य का लाभ पहुचाने मे समर्थ थे तो वे पद आज भी भक्त को उसी मनोभूमि मे ले जाने मे समर्थ है। सूर की प्रासगिकता केवल भक्ति भावना का वातावरण बनाने मे नही है वरन वह चचल मनोवृत्तियो के परिष्कार मे भी योग देने वाला साधन है अत वह आज भी प्रासगिक है। मीरा और रसखान की कविता के विषय मे भी यही तर्क प्रस्तुत किया जा सकता है। उद्धव शतक की कथावस्तु के विषय मे भी यह तर्क दिया जा सकता है।

उद्धव शतक की कथावस्तु का अन्तरग तत्व भक्ति ही है। भक्ति विषय सगुण निर्गुण विवाद की भूमि पर यह कृति खडी है। यदि निर्गुण भक्ति का प्रत्याख्यान अभीष्ट माना जाय तो इस कृति की सार्थकता सगुण भक्ति के प्रतिपादन मे स्पष्टत स्वीकार्य होगी। भक्ति-मीमासा आज के युग मे सर्वथा समाप्त हो गई है

ऐसा नही कहा जा सकता। सगुण भक्ति को स्वीकार करने वाले भक्त गण के लिए उद्धव शतक की कथावस्तु आज भी बहुत प्रासगिक मानी जायगी। गोपियो के तक वितक, खडन मडन आदि कवल मनोविनोद के विषय न होकर एक वस्तु सत्य क समथक ह। ईश्वर भक्ति म आस्था न रखन वाले व्यक्ति क। यह सब व्यथ का झमेला प्रतीत होगा और वह इस कृति का आधुनिक सदभ म अप्रासगिक ठहरा देगा किन्तु इस काव्य कृति का एक दूसरा पहलू भी है जो मानव मात्र के साथ जुडा हुआ है।

प्रेम एक रागात्मिका वत्ति है। प्रेम मे मनुष्य को अपनी चित्त वत्ति के लिए रजक एव आह्लाद भाव वस्तु प्राप्त होती है। उद्धव शतक म इसी रागात्मिका प्रेम भावना का वणन है। गोपिया श्रीकृष्ण से प्रेम करती ह, श्रीकृष्ण भी उनके प्रेम से आकृष्ट होकर उनका स्मरण करत है। दोना ओर प्रेम की तीव्रता है। इस प्रेम की तीव्रता को रत्नाकर जी न उद्धव-शतक म पूरे विस्तार से वर्णित किया ह। प्रेम के दोनो पक्ष—सयोग और वियोग—इस कृति मे उभर है। सयोगावस्था का स्मरण है और वियोगावस्था की तीव्रानुभूति का विस्तत वणन। आज के सदभ मे मानव को प्रेमानुभूति स रहित नही माना जा सकता। प्रेम के आलम्बन उद्दीपन और सचारी उद्धव-शतक म पूरे आयाम म चित्रित किए गए ह। अत इसकी प्रासगिकता को स्वीकार करना होगा। प्रेम, शृगार और राग आज भी प्रासगिक है।

भक्ति और प्रेम शृगार के अतिरिक्त उद्धव-शतक की भाषा और अभिव्यजना को भी प्रासगिकता के निकष पर परखना आवश्यक है। कहा जाता है कि उद्धव-शतक ब्रजभाषा की रचना है। यह भाषा आधुनिक युग की भाषा नही है। अत इसे भाषा के स्तर पर प्रासगिक नही कहा जा सकता। किन्तु भाषा और अभिव्यजना का प्रश्न कृति की प्रासगिकता से कोई सरोकार नही रखता। यदि भाषा के स्तर पर ही प्रासगिकता का निणय अभीष्ट हो तो सस्कृत के वाल्मीकि व्यास, कालिदास, भवभूति, बाणभट्ट आदि सभी कालजयी महाकवि अप्रासगिक हो जाएगे। किन्तु किसी भी समीक्षक न इन कवियो को अप्रासगिक नही कहा है। भक्ति और रीतिकाल के कवियो की भाषा भी ब्रज और अवधी है किन्तु वे भाषा के कारण अप्रासगिक नही है। प्राकृत और अपभ्र श के कवि भी भाषा के कारण अप्रासगिक नही कहे जा सकत। प्रासगिकता की परीक्षा भाव और विचार के निकष पर ही होती है।

भाषा तो विचारो का वाहन मात्र है। वाहन का महत्व अवश्य है किन्तु वाहन भाव और विचार से ऊपर नही होता। अपढ कवि के पास यदि भाव और विचार सम्पदा है तो वह सहृदय की चेतना म लहर उत्पन्न करने मे समथ होता है। रत्नाकर जी ने भाषा का एक अभिजात रूप प्रस्तुत किया तथा भावो के

उदात्तीकरण के लिए एक पौराणिक कथाश का प्रयोग किया। वह कथाश एक दार्शनिक मतवाद (सगुण भक्ति) से जुड़ा होने के साथ भक्ति मीमासा का भी एक पक्ष उजागर करने वाला है। अत उसे आधुनिक युग म भी प्रासगिक माना जाना चाहिए।

मध्ययुगीन भक्ति-काव्य का भी इसी स्तर पर मूल्याकन किया जाता है और उस युग विशेष की देन न मानकर मानवीय सवेदना का शाश्वत रूप माना जाता है। मनुष्य की चित्तवत्ति चचल होती है। स्थिरता का अभाव उसे एक स्थान पर टिकने नही देता। गोपिया इसका अपवाद है उनकी चित्त वत्ति पूर्णतया श्रीकृष्ण म डूबी हुई है। स्थिर चित्त स वे केवल कृष्ण का ही ध्यान करती ह। उन्ही को अपना आराध्य मानती हैं। इस प्रकार यह मुक्तक काव्य भक्ति और प्रेम, दो शाश्वत तत्वो का समन्वय करने वाला कालजयी काव्य है। इसकी प्रासगिकता इन्ही दो तत्वो के साथ जुडी हुई है। जब तक मनुष्य भक्ति और प्रेम के साथ अपना रागात्मक सम्बन्ध रखेगा तब तक उद्धव-शतक भी अपनी प्रासगिकता को बनाए रखेगा। विज्ञान ने भौतिकता को प्रश्रय दिया है, भावुकता को अस्वीकार किया है किन्तु मनुष्य की मूल वत्तियो को अभी वह नष्ट नही कर सका है। जब तक मनुष्य अपनी मूल वृत्तियो म सम्पृक्त रहेगा तब तक उद्धव-शतक जैसी रचनाएँ अपना प्रभाव समाज पर डालती रहेगी, और व अप्रासगिक नही होगी।

०००

उद्धव-शतक

॥ ओ ॥

श्री गणेशाय नमः

मंगलाचरण

जासौं जाति विषय विषाद की बिवाई बेगि
चोप-चिकनाई चित्त चारु गहिबौ करै।
कहै रतनाकर कवित्त-बर-व्यंजन मैं
जासौं स्वाद सौगुनौ रुचिर रहिबौ करै॥
जासौं जोति जागति अनूप मन-मंदिर मैं
जड़ता - विषम - तम-तोम - दहिबौ करै।
जयति जसोमति के लाडिले गुपाल, जन
रावरी कृपा सौं सो सनेह लहिबौ करै॥

श्री उद्धव को मथुरा से व्रज भे ते समय के कवित्त

(१)

न्हात जमुना में जलजात एक देख्यौ जात
जाकौ अध-ऊरध अधिक मुरझायौ है।
कहै रतनाकर उमहि गहि स्याम ताहि
बास-बासना सो नैंकु नासिका लगायौ है॥
त्यौं ही कछु घूमि झूमि बेसुध भए कै हाय
पाय परे उखरि अभाय मुख छायौ है।
पाए घरी द्वैक मैं जगाइ ल्याइ ऊधौ तीर
राधा-नाम कीर जब औचक सुनायौ है॥

(२)

आए भुज-बंध दए ऊधव-सखा कै कंध
डग-मग पाय पग धरत धराए है।
कहै रतनाकर न बूझै कछु बोलत औ
खोलत न नैन हू अचैन चित छाए हैं॥
पाइ बहे कंज मैं सुगंध राधिका को मंजु
ध्याए कदली बन मतंग लौं मताए है।
कान्ह गए जमुना नहान पै नए सिर सौं
नीके तहां नेह की नदी मैं न्हाइ आए हैं॥

(३)

देखि दूरि ही तै दौरि पौरि लगि भेटि ल्याइ
आसन दै सासनि समेटि सकुचानि तैं।
कहै रतनाकर यौं गुनन गुबिंद लागे
जौलौं कछु भूले से भ्रमे से अकुलानि तैं॥
कहा कहैं ऊधौ सौं कहैं हूँ तो कहा लौं कहैं
कैसें कहैं कहैं पुनि कौन सी उठानि तैं।
तौलौं अधिकाई तैं उमगि कंठ आइ भिंचि
नीर ह्वै बहन लागी बात अँखियानि तैं॥

(४)

विरह-विथा की कथा अकथ अथाह महा
कहत बनै न जो प्रवीन सुकवीनि सा।
कहै रतनाकर बुझावन लगे ज्यां कान्ह
ऊधौ कों कहन हेत ब्रज-जुवतीनी सा ।।
गहवरि आयौ गरो भभरि अचानक त्यौं
प्रेम पर्‌यौ चपल चुचाइ पुतरीनि सौं।
नकु कही बैननि, अनेक कही नैननि सौं,
रही-सही सोऊ कहि दीनी हिचकीनि सौं ।।

(५)

नद औ जसोमति के प्रेम-पगे पालन की
लाड-भरे लालन की लालच लगावती।
कहै रतनाकर सुधाकर-प्रभा सौं मढी
मजु मृगनैननि के गुन-गन गावती ।।
जमुना कछारनि की रग-रस-रारनि की
बिपिन-बिहारनि की हौस हुमसावती।
सुधि ब्रज-बासिनि दिवैया-सुख रासिनि की
ऊधौ नित हमकौ बुलावन कौ आवती ।।

(६)

चलत न चार्‌यौ भाति कोटिनि बिचार्‌यौ तऊ
दाबि दाबि हार्‌यौ पै न टार्‌यौ टसकत है।
परम गहीली बसुदेव-देवकी की मिली
चाह चिमटी हूँ सा न खेंचौ खसकत है ।।
कढत न क्यौ हूँ निहाय बिथके उपाय सबै
धीर आक छीर हूँ न धारैं धसकत है।
ऊधौ ब्रज बास के बिलासनि कौ ध्यान धँस्यौ
निसि दिन काटे लौ करेजौ कसकत है ।।

(७)

रूप रस पीवत अघात ना हुते जो तब
सोई अब आँस ह्वै उबरि गिरिबौ करैं।
कहै रतनाकर जुडात हुते देखे जिन्है
याद किए तिनकौं अँवा सौ घिरिबौ करैं॥
दिननि के फेर सो भयौ है हेर फेर ऐसौ
जाकौ हेर फेरि हेरिबोई हिरबौ करै।
फिरत हुते जु जिन कुंजन मैं आठौ जाम
नैननि मैं अब सोई कुंज फिरिबौ करैं॥

(८)

गोकुल की गैल गैल गैल गैल ग्वालिन की
गोरस कैं काज लाज बस कै बहाइबौ।
कहै रतनाकर रिझाइबौ नवेलिनि कौं
गाइबौ औ नाचिबौ नचाइबौ॥
कीबौ स्रमहार मनुहार कै बिबिध बिधि
मोहिनी मृदुल मंजु बाँसुरी बजाइबौ।
ऊधौ सुख संपति समाज ब्रज मंडल के
भूलें हूँ न भूल भूलें हमकौ भुलाइबौ॥

(६)

मोर के पखौवनि कौ मुकुट छबीलौ छोरि
क्रीट मनि मंडित धराइ करिहै कहा।
कहै रतनाकर त्यौं माखन-सनेही बिनु
षट रस व्यंजन चबाइ करिहै कहा॥
गोपी ग्वाल बालनि कौं झोंकि बिरहानल मैं
हरि सुर बृंद की बलाइ करिहैं कहा।
प्यारौ नाम गोबिंद गुपाल कौ बिहाइ हाय
ठाकुर त्रिलोक के कहाइ करिहैं कहा॥

(१०)

कहत गुपाल माल मंजु मनि पुंजनि की
गुंजनि की माल की मिसाल छवि छावै ना।
कहै रतनाकर रतन-मैं किरीट अच्छ
मोर पच्छ-अच्छ-अच्छ असद्द सु भावै ना॥
जसुमति मैया की मलैया अरु माखन कौ
काम धेनु गोरस हूँ गूढ़ गुन पावै ना।
गोकुल की रज के कनूका औ तिनूका सम
संपति त्रिलोक की विलोकन मैं आवै ना॥

(११)

राधा-मुख मंजुल-सुधाकर के ध्यान ही सौं
प्रेम रतनाकर हियैं यौं उमगत है।
त्यौं ही विरहातप प्रचंड सौं उमडि अति
ऊरध उसास कौ झकोर यौं जगत है॥
केवट विचार कौ बिचारौ पचि हारि जात
होत गुन पाल ततकाल नभ गत है।
करत गंभीर धीर लंगर न काज कछू
मन को जहाज डगि डूबन लगत है॥

(१२)

सील-सनी सुरुचि सु बात चलैं पूरब की
औरै ओप उमगी दृगनि मिदुराने तें।
कहै रतनाकर अचानक चमक उठी
उर घनस्याम कै अधीर अकलाने तें॥
आसाछन्न दुरदिन दीस्यौ सुरपुर माँहि
ब्रज मैं सुदिन बारि बूंद हरियाने तें।
नीर कौ प्रवाह कान्ह-नैननि कैं तीर बह्यौ
धीर बह्यौ ऊधौ-उर अचल रसाने तें॥

(१३)

प्रेम भरी कातरता कान्ह की प्रगट होत
ऊधव अवाई रहे ज्ञान ध्यान सरके।
कहै रतनाकर धरा कौ धीर धूरि भयौ
भूरि भीति भारनि फनिंद फन करके॥
सुर सुर राज सुद्ध स्वारथ सुभाव सने
संसय समाए धाए धाम विधि हर के।
आई फिरि ओप ठाम ठाम ब्रज गामनि के
विरहिनि बामनि के बाम अंग फरके॥

(१४)

हेत खेत माहि खोदि खाई सुद्धस्वारथ की
प्रेम तन गोपि राख्यौ ताप गमनौ नहीं।
करनी प्रतीत काज करनी बनावट की
राखौ ताहि हेरि हियँ हौंसनि सनौ नहीं॥
घात मै लगे है ये बिसासी ब्रजवासी सबै
इनके अनोखे छल छंदनि छनौ नहीं।
बारनि कितेक तुम्हे बारन कितेक करै
बारन उबारन ह्वै बारन बनौ नहीं॥

(१५)

पाचौ तत्त्व माहि एक सत्व ही की सत्ता सत्य
याही तत्त्व-ज्ञान कौ महत्त्व स्रुति गायौ है।
तुम तौ विवेक रतनाकर कहौ क्यौ पुनि
भेद पञ्चभौतिक के रूप मैं रचायौ है॥
गोपिनि में, आप में, वियोग और संजोग हूँ मैं
एकै भाव चाहिए सचोप ठहरायौ है।
आपु ही सौ आपुकौ मिलाप और विछोह कहा
मोह यह मिथ्या सुख दुख सब ठायौ है॥

(१६)

दिपत दिवाकर कौ दीपक दिखावै कहा
तुमसम ज्ञान कहा जानि कहिवौ करै।
कहै रतनाकर पै लौकिक लगाव मानि
परम अलौकिक की थाह थहिवौ करै॥
असत असार या पसार मैं हमारी जान
जन भरमाए सदा ऐसे रहिवौ करै।
जागत औ पागत अनेक परपंचनि मैं
जैसे सपने मैं अपने को लहिवौ करै॥

(१७)

हा ! ! इन्है रोकन कौ टोक न लगावौ तुम
विसद विवेक ज्ञान गौरव दुलारे ह्वै।
प्रेम-रतनाकर कहत इमि ऊधव सौं
थहरि करेजौ थामि परम दुखारे ह्वै॥
सीतल करत नैंकु हीतल हमारौ परि
विषम वियोग ताप समन पुचारे ह्वै।
गोपिनि के नैन नीर ध्यान नलिका ह्वै धाइ
दृगनि हमारे आइ छूटत फुहारे ह्वै॥

(१८)

प्रेम नेम निफल निवारि उर अंतर तैं
ब्रह्म ज्ञान आनंद निधान भरि लैहैं हम।
कहै रतनाकर सुधाकर मुखीन ध्यान
आँसुनि सौं धोइ जोति जोई जरि लैहैं हम॥
आवौ एक वार धारि गोकुल-गली की धूरि
तब इहिं नीति की प्रतीति धरि लैहैं हम।
मन सौं, करेजे सौं, स्रवन सिर-आँखिनि सौं
ऊधव तिहारी सीख भीख करि लैहैं हम॥

(१९)

बात चलै जिनकी उडात धीर धूरि भयौ
ऊधो मन्त्र फूकन चले हैं तिन्हैं ज्ञानी ह्वै ।
कहै रतनाकर गुपाल के हिये मैं उठी
हूक मूक भायनि की अकह कहानी ह्वै ॥
गहबर कंठ ह्वै न कढन सदेश पायौ
नैंन मग तौलौं आनि बैंन अगवानी ह्वै ।
प्राकृत प्रभाव सौं पलट मनमानी पाइ
पानी आज सकल सवार्‌यौ काज बानी ह्वै ॥

(२०)

ऊधव के चलत गुपाल उर माहि चल
आतुरी मची सो परै कहि न कबीनि सौं ।
कहै रतनाकर हियौ हूँ चलिबे कौ सग
लाख अभिलाष लै उमहि बिकलौनि सौं ॥
आनि हिचकी ह्वै गरै बीच सकस्यौई परै
स्वेद ह्वै रस्यौई परै रोम झझरीनि सौ ।
आनन दुवार तै उसांस ह्वै बढयौई परै
आस ह्वै कढयोई परै नैंन खिरकीनि सौ ॥

० ० ०

श्री उद्धव के मथुरा से ब्रज जाते समय के मार्ग के कवित्त

(२१)

आइ ब्रज-पथ रथ ऊधौ कौ चढाइ कान्ह
अकथ कथानि की व्यथा सौं अकुलात हैं।
कहै रतनाकर बुझाइ कछु रोकै पाय
पुनि कछु ध्याइ उर धाइ उरझात हैं॥
रससि उसासनि सो वहि-वहि आंसनि सौं
भूरि भरे हिय के हुलास न उरात है।
सीरे तपे विविध सँदेसनि सो वातनि की
घातनि की झोक मै लगेई चले जात हैं॥

(२२)

लै कै उपदेस-औ-सँदेस पन ऊधौ चले
सुजस-कमाइबे उछाह्-उदगार मैं।
कहै रतनाकर निहारि कान्ह कातर पै
आतुर भए यौं रह्यो मन न सभार मैं॥
ज्ञान-गठरी की गाँठि छरिक न जान्यो कब
हरें-हरें पूजी सब सरकि कछार मैं।
डार मैं तमालनि की कछु विरमानी अरु
कछु अरुझानी है करीरनि के झार मैं॥

(२३)

हरैं-हरैं ज्ञान के गुमान घटि जानि लगे
जोग के विधान ध्यान हूँ तैं टरिबै लगे।
नैननि मैं नीर रोम सकल शरीर छयौ
प्रेम-अदभुत सुख सूझि परिबैं लगे॥
गोकुल के गाव की गली में पग पारत हीं
भूमि क प्रभाव भाव औरैं भरिबैं लगे।
ज्ञान मारतड के सुखाए मनु मानस कौं
सरस सुहाये घनश्याम करिबै लगे॥

श्री उद्धव के व्रज मे पहुचने के समय के कवित्त

(२४)

दुख सुख ग्रीषम और सिसिर न व्यापै जिन्है
छापै छाप एकै हिय ब्रह्म ज्ञान-साने मैं।
कहै रतनाकर गभीर सोई ऊधव को
धीर उघरायौ आनि व्रज के सिवाने मैं॥
औरै मुख रग भयौ सिथिलित अग भयौ
बैन दबि दग भयौ गर गरवाने मैं।
पुलकि पसीजि पास चापि मुरझानै कापि
जानै कौन बहति बयारि बरसाने मैं॥

(२५)

धाईं धाम धाम तैं अवाई सुनि ऊधव की
बाम बाम लाख अभिलाषनि सौ ग्वै रही।
कहै रतनाकर पै विकल बिलोकि तिन्है
सकल करेजौ थामि आपुनपौ ख्वै रही॥
लेखि निज भाग लेख रेख तिन आनन की
जानन की ताहि आतुरी सौ मन म्वै रही।
आँस रोकि सास रोकि पूछन हुलास रोकि
मूरति निरास की सी आस भरी ज्वै रही॥

(२६)

भेजे मनभावन के उद्धव के आवन की
सुधि व्रज गावनि मैं पावन जबै लगी।
कहै रतनाकर गुवालिनि की झौरि झौरि
दौरि-दौरि नद पौरि आवन तबै लगी॥
उझकि-उझकि पद कजनि के पजनि पै
पेखि पेखि पाती छाती छोहनि छवै लगी।
हमकौ लिख्यौ है कहा, हमकौ लिख्यौ है कहा
हमकौ लिख्यौ है कहा कहन सबै लगी॥

(२७)

देखि-देखि आतुरी विकल व्रज-वारिनि की
ऊधव की चातुरी सकल वहि जाति हैं।
कहै रतनाकर कुसल कहि पूछि रहे
अपर सनेस की न बातें कहि जाति है॥
मौन रसना ह्वै जागि जदपि जनायौ सबै
तदपि निरास वासना न गहि जाति हैं।
साहस कै कछुक उमाहि पूछिवे कौ ठाहि
चाहि उत गोपिका कराहि रहि जाति है॥

(२८)

दीन दशा देखि व्रज बालनि की ऊधव कौ
गरि गौ गुमान ज्ञान गौरव गुठाने से।
कहै रतनाकर न आए मुख बैन नैन
नीर भरि ल्याए भए सकुचि सिहाने से॥
सूखे से स्रमे से सकबके से सके से थके
भूले से भ्रमे भभरे से भकुवाने से।
हौले से हले से हल हूले से हिये मैं हाय
हारे से हरे से रहे हेरत हिराने से॥

(२९)

मोह-तम रासि नासिवे कौ स हुलास चले
करि कौ प्रकास पारि मति रति माती पर।
कहै रतनाकर पै सुधि उधिरानी सबै
धूरि परी औरि जोग-जुगति सघाती पर॥
चलत विषम ताती बात व्रज वारिनि की
विपति महान परी ग्रान घरी जाती पर।
लच्छ दुरे सकल विलोकत अलच्छ रहे
एक हाथ पाती एक हाथ दिये छाती पर॥

श्री उद्धव-वचन व्रजवासियो से

(३०)

चाहत जो स्ववस सँजोग स्याम-सु दर को
जोग के प्रयोग मैं हियो तौ त्रिलस्यौ रहै।
कहै रतनाकर सु-अ तर मुखी है ध्यान
मजु हिय कज-जगी जोति मैं वस्यौ रहै ।।
ऐसे करौ लीन आतमा का परमातमा मैं
जामैं जड चेतन विलास विकस्यौ रहै।
मोह-वस जोहत विछोह जिय जाको छोहि
सो तौ सव अन्तर निरतर वस्यौ रहै ।।

(३१)

पच तत्त्व मैं जो सच्चिदानद की सत्ता सो तौ
हम तुम उनमैं समान ही समोई है।
कहै रतनाकर विभूति पच भूत हू की
एक ही सी सकल पभूतनि मे पोई है ।।
माया के प्रपच ही सौ भासत प्रभेद सवै
काच फलकनि ज्यो अनेक एक सोई है।
देखौ भ्रम पटल उघारि ज्ञान आखिनि सौ
का ह सव ही मे कान्ह ही में सव कोई है ।।

(३२)

सोई कान्ह सोई तुम सोई सवही है लखो
घट घट-अ तर अनन्त स्यामघन कौं।
कहै रतनाकर न भेद-भावना सौ भरौ
वारिधि औ वूद के विचारि बिछुरन कौं ।।
अविचल चाहत मिलाप तौ विलाप त्यागि
जोग जुगती करि जुगावौ ज्ञान धन कौं।
जीव आतमा कौ परमातमा मैं लीन करौ
छीन करौ तन कौ न दीन करौ मन कौ ।।

सुनि सुनि ऊधव की अकह कहानी कान
कोऊ थहरानी, कोऊ थानहिं थिरानी है।
कहै रतनाकर रिसानी, बररानी कोऊ,
कोऊ बिलखानी, बिकलानी बिथकानी है॥
कोऊ सेद-सानी, कोऊ भरि दृग-पानी रही
कोऊ घूमि-घूमि परी भूमि मुरझानी है।
कोऊ स्याम-स्याम कै बहकि बिललानी कोऊ
कोमल करेजौ थामि सहमि सुखानी है॥

०००

गोपी-वचन उद्धव-प्रति

(३४)

रस के प्रयोगनि के सुखद सु जोगनि के
जेते उपचार चारु मंजु सुखदाई हैं।
तिनके चलावन की चरचा चलावै कौन
देत ना सुदर्शन हूँ यों सुधि सिराई हैं॥
करत उपाय ना सुभाय लखि नारिनि को
भाय क्यौं अनारिनि को भरत कन्हाई हैं।
ह्या तौ विषमज्वर-वियोग की चढाई यह
पाती कौन रोग की पठावत दवाई हैं॥

(३५)

ऊधौ कहौ सूधौ सौ सनेस पहिलै तौ यह
प्यारे परदेश तैं कबै धौ पग पारिहैं।
कहै रतनाकर तिहारी परि बातनि मैं
मीडि हम कबलौं करेजौ मन मारिहैं॥
लाइ-लाइ पाती छाती कब लौं सिरैहैं हाय
धरि-धरि ध्यान धीर कब लगि धारिहैं।
बैननि उचारिहै उराहनौ कबै धौ सबै
स्याम कौ सलोनो रूप नैननि निहारिहैं॥

(३६)

षटरस व्यंजन तौ रञ्जन सदा ही करे
ऊधौ नवनीत हूँ स-प्रीति कहूँ पाव हैं।
कहै रतनाकर बिरद तौ बखानैं सबै
साँची कहौ केते कहि लालन लडावै हैं॥
रतन-सिंहासन विराजि पाकसासन लौं
जग-चहुँ-पासनि तौ सासन चलावै हैं।
जाइ जमुना-तट पै कोउ वट-छाँहि माँहि
पाँसुरी उमाहि कबौ बाँसुरी बजावै हैं॥

(३७)

कान्ह-दूत कैधौं ब्रह्म-दूत ह्वै पधारे आप
धारे प्रन फेरन को मति ब्रजबारी की।
कहै रतनाकर पै प्रीति रीति जानत ना
ठानत अनीति आनि नीति लै अनारी की ।।
मान्यौ हम, कान्ह ब्रह्म एकही कह्यौ जो तुम
तौहूँ हमे भवति ना भावना अन्यारी की।
जैहै बनि बिगरि न बारिधिता बारिधि की
बूँदता बिलैहै बूँद बिवस बिचारी की ।।

(३८)

चोप करि चंदन चढ़ायौ जिन अंगनि पै
तिनपै बजाइ तूरि धूरि दरिबौ कहौ ।
रस रतनाकर स नेह निरवार्‌यौ जाहि
ता कच को हाय जटा जूट बरिबौ कहौ ।।
चंद अरबिंद लौं सराह्यौ ब्रजचंद जाहि
ता मुख को काकचञ्चवत करिबौ कहौ ।
छेदि-छेदि छाती छलनी कै बैन-बाननि सौ
तामैं पुनि ताइ धीर-नीर धरिबौ कहौ ।।

(३९)

चिंता मनि मंजुल पवारि धूर धारनि मैं
काँच मन मुकुर सुधारि रखिबौ कहौ ।
कहै रतनाकर वियोग-आगि सारन को
ऊधौ हाय हमकौं बयारि भखिबौ कहौ ।।
रूप रस-हीन जाहि निपट निरूपि चुके
ताको रूप ध्याइबौ औ रस चखिबौ कहौ ।
एते बड़े बिस्व माँहि हेरैं हूँ न पैये जाहि,
ताहि त्रिकुटी मैं नैन मूँदि लखिबौ कहौ ।।

(४०)

आए हौ सिखावन कौ जोग मथुरा तें तोपै
ऊधौ ये बियोग के बचन बतरावौ ना।
कहै रतनाकर दया करि दरस दीन्यौ
दुख दरिबै कौ, तोपै अधिक बढावौ ना॥
टूक टूक ह्वै है मन मुकुर हमारौ हाय
चूकि हू कठोर बैन पाहन चलावौ ना।
एक मनमोहन तौ बसिकैं उजार्‌यौ मोहिं
हिय मैं अनेक मनमोह बसावौ ना॥

(४१)

चुप रहौ ऊधौ सूधौ पथ मथुरा कौ गहौ
कहौ न कहानी जौ बिबिध कहि आए हौ।
कहै रतनाकर न बूझिहैं बुझाएँ हम
करत उपाय वृथा भारी भरमाएँ हौ॥
सरल स्वभाव मृदु जानि परौ ऊपर तैं
पर उर घाव करि लौन सौ लगाए हौ।
रावरी सुधारी मैं भरी है कुटिलाई कूटि
बात की मिठाई मैं लुनाई लाइ ल्याए हौ॥

(४२)

नेम ब्रत संजम के पींजरैं परे कौ जब
लाज-कुल-कानि प्रतिबधंहि निवारि चुकीं।
कौन गुन गौरव कौ लंगर लगावैं जब
सुधिबुधिही कौ भार टेक करि टारि चुकीं॥
जोग रतनाकर मैं सास घूंटि बूडै कौन
ऊधौ हम सूधौ यह बानक बिचारि चुकीं।
मुक्ति-मुकता कौ मोल माल ही कहा है जब
मोहन लला पै मन मानिक ही वारि चुकीं॥

(४३)

ल्याए लादि बादि ही लगावन हमारे गरैं
हम सब जानि कही सुजस-कहानी ना ।
कहै रतनाकर गुनाकर गुबिंद हूँ कै
गुननि अनत वेधि सिमिटि समानी ना ॥
हाथ विन मोल हूँ बिकी न मग हूँ मैं कहूँ
तापै बटमार-टोल लोल हूँ लुभानी ना ।
केती मिली मुक्ति वधू वर के कूबर मैं
ऊपर भई जो मधुपुर मैं समानी ना ॥

(४४)

हम परतच्छ मैं प्रमान अनुमाने नाहिं
तुम भ्रम भौर मैं भलें ही वहिवौ करौ।
कहै रतनाकर गुबिंद ध्यान धार हम
तुम मनमानौ ससा सिंग गहिवौ करौ ॥
देखति सो मानति हैं सूधौ न्यावजानति है
ऊधौ ! तुम देखि हूँ अदेख रहिवौ करौ।
लखि ब्रज भूप-रूप अलख अरूप ब्रह्म
हम न कहैंगी तुम लाख कहिवौ करौ ॥

(४५)

रंग रूप रहित लखावत सबही है हम
वैसो एक और ध्याइ धीर धरिहैं कहा।
कहै रतनाकर जरी है बिरहानल मे
और अब जोति कौ जगाइ जरिहैं कहा ॥
राखौ धरि ऊधौ उतै अलख अरूप ब्रह्म
तासौ काज कठिन हमारे सरिहै कहा ।
एक ही अनंग साधि साध सब पूरी अब
और अंग रहित अराधि करिहैं कहा ॥

(४६)

कर विनु कैसे गाय दुहिहै हमारी वह
पद विनु कैसे नाचि थिरकि रिझाइहै ।
कहै रतनाकर वदन विनु कैसे चाखि
माखन बजाइ बैनु गोधन गवाइहै ॥
देखि सुनि कैसे दृग स्रवन विनाही हाय
भोरे ब्रजवासिनि को विपति वराइहै ।
रावरो अनूप कोऊ अलख अरूप ब्रह्म
ऊधो कहो कौन धौं हमारे काम आइहै ॥

(४७)

वे तौ वस वसन रँगावैं मन रँगत ये
भसम रमावैं वे ये आपुही भसम है ।
साँस-साँस माहिं वहु वासर वितावत वे
इनके प्रतेक सास जात ज्यौं जनम हैं ॥
ह्वै कै जग-मुक्ति सौ विरक्त भुक्ति चाहत वे
जानत ये भुक्ति मुक्ति दोऊ विष-सम है ।
करिकै विचार ऊधौ सूधो मन माहिं लखौ
जोगी सौ वियोग भोग भोगी कहा कम हैं ॥

(४८)

जोग को रमावैं औ समाधि को जगावैं इहा
दुख-सुख सधाधि सौं निपट निवेरी हैं ।
कहै रतनाकर न जानें क्यो इतै धौ आइ
साँसनि की सासना की वासना वखेरी हैं ॥
हम जमराज की धरावति जमा न कछू
सुर पति सपति की चाहति न ढेरी है ।
चेरी हैं न ऊधो ! काहू ब्रह्म के वबा की हम
सूधौ कहे देति एक कान्ह की कमेरी हैं ॥

(४६)

सरग न चाहैं अपवरग न चाहैं सुनो
भुक्ति-मुक्ति दोऊ सौं बिरक्ति उर आन हम ।
कहै रतनाकर तिहारे जोग-रोग माहि
तन मन सासनि की सासति प्रमाने हम ॥
एक ब्रजचंद कृपा मंद मुसकानि ही मैं
लोक परलोक को अनंद जिय जाने हम ।
जाके या वियोग-दुख हूँ सुख मैं ऐसी कछू
जाहि पाइ ब्रह्म-सुख हू मैं दुख माने हम ॥

(५०)

जग सपनौ सौ सब परत दिखाई तुम्हैं
तातैं तुम ऊधौ हमैं सोवत लखात हौ ।
कहैं रतनाकर सुनै को बात सोवत की
जोई मुह आवत सो विवस बयात हौ ॥
सोवत मैं जागत लखत अपने कौं जिमि
त्यौं ही तुम आपही सुज्ञानी समुझात हौ ।
जोग-जोग कबहूँ न जानै कहा जोहि जकौ
ब्रह्म-ब्रह्म कबहूँ बहकि बररात हौ ॥

(५१)

ऊधौ यह ज्ञान कौ बखान सब बाद हमैं
सूधौ बाद छाडि बकवादहिं बढावै कौन ।
कहै रतनाकर बिलाय ब्रह्म काय माहि
आपने सौं आपुनपौ आपनौ नसावै कौन ॥
काहू तौ जनम मैं मिलैगी स्यामसुन्दर का
याहू आस प्रानायाम-सास मै उडावै कौन ।
परि कै तिहारी ज्योति-ज्वाल की जगाजग मै
फेर जग जाइवे की जुगती जरावै कौन ॥

(५२)

वाही मुख मंजुल की चहति मरीचैं सदा
हमकौं तिहारी ब्रह्म-ज्योति करिबौ कहा।
कहै रतनाकर सुधाकर-उपासिनि कौं
भानु की प्रभानि कै जुहारि जरिबौ कहा॥
भोगि रही बिरचे बिरंचि के संजोग सबै
ताके सोग सारन कौ जोग चरिबौ कहा।
जब ब्रजचंद कौ चकोर चित चारु भयौ
बिरह चिंगारिनि सौं फेरि डरिबौ कहा॥

(५३)

ऊधौ जम-जातना की बात न चलावौ नैंकु
अब दुख सुख कौ बिबेक करिबौ कहा।
प्रेम-रतनाकर-गंभीर पर मीननि कौं
इहिं भव-गोपद की भीति भरिबौ कहा॥
एकै बार लैहैं मरि मीच की कृपा सौं हम
रोकि-रोकि सांस बिनु मीच मरिबौ कहा।
छिन जिन झेली कान्ह-बिरह-बलाय तिन्हैं
नरक निकाय की धरक धरिबौ कहा॥

(५४)

जोगिनि की भोगिनि की बिकल बियोगिनि की
जग मैं न जागती जमातैं रहि जाइँगी।
कहै रतनाकर न सुख के रहे जो दिन
तौ ये दुख-द्वंद की न रातैं रहि जाइँगी॥
प्रेम-नेम छांड़ि छेम जो बतावत सो
भीति ही नहीं तौ कहा छात रहि जाइँगी।
घातैं रहि जाइँगी न कान्ह की कृपा तैं इती
ऊधौ कहिबे कौं बस बातैं रहि जाइँगी॥

(५५)

कठिन करेजौ जो न करक्यौ वियोग होत
तापर तिहारौ जन्त्र मन्त्र कँचिहै नही।
कहै रतनाकर बरी है बिरहानल मैं
ब्रह्म की हमार जिय जोति जँचिहै नही॥
ऊधौ ज्ञान-भान की प्रभानि ब्रजचद बिना
चहकि चकोर चित चोपि नचिहै नही।
स्याम-रँग-राँचे साचे हिय हम ग्वारिनि कै
जोग की भगौही भेष-रेख रँचिहै नही॥

(५६)

नैननि के नीर औ उसीर सौ पुलकावलि
जाहि करि सीरौ सीरी वातहिं बिलास हम।
कहै रतनाकर तपाई बिरहातप की
आवन न देति जामै विषम उसास हम॥
सोई मन-मन्दिर तपावन के काज आज
रावरे कहे तैं ब्रह्म-जोति लै प्रकासैं हम।
नद के कुमार सुकुमार कौ बसाइ यामैं
ऊधौ अब आइ कै बिसास उदबासैं हम॥

(५७)

जोहैं अभिराम स्याम चित का चमक ही मैं
औ कहा ब्रह्म की जगाइ जोति जोहैंगी।
कहै रतनाकर तिहारी बात ही सौ रुकी
साँस की न सासति कै औरौ अवरोहैंगी॥
आपुहि भई है मृगछाला ब्रज-लाला सूखि
तिनपै अपर मृगछाला कहा सोहैंगी।
ऊधौ मुक्ति-माल बृथा मढत हमारे गरैं
कान्ह बिना तासो कहौ काकौ मन मोहैंगी॥

(५८)

कीजै ज्ञान भानु कौ प्रकास गिरि-सृ गनि पै
ब्रज में तिहारी कला नैंकु घटिहैं नहीं।
कहै रतनाकर न प्रेम-तरु पैहै सूखि
याकी डार-पात तृन-तूल घटिहैं नहीं॥
रसना हमारी चारु चातकी बनी है ऊधौ
पी-पी की विहाइ और रट रटिहै नहीं।
लौटी-पौटी बात को बवडर बनावत क्यौं
हिय तें हमारे घनश्याम हटिहै नहीं॥

(५९)

नैननि के आगें नित नाचत गुपाल रहै
ख्याल रहै सोई जो अनन्य-रसवारे है।
कहै रतनाकर सो भावना भरीयै रहै
जाके चाव भाव रचे उर मै अखारे हैं॥
ब्रह्म हूँ भए पै नारि ऐसियै बनी जो रहैं
तौ तौ सहैं सीस सबै बैन जो तिहारे हैं।
यह अभिमान तौ गव हैं ना गये हूँ प्रान
हम उनकी है वह प्रीतम हमारे है॥

(६०)

सुनी गुनी समझी तिहारी चतुराई जिती
कान्ह ही पढाई कविताई कुबरी की हैं।
कहै रतनाकर त्रिकाल हू त्रिलोक हू म
आन अननैंकु ना त्रिदेव की कहो की हैं॥
कहहिं प्रतीति प्रीति नीति हू तिवाचा वाधि
ऊधौ साच मन की हिये की अरुजो की हैं।
वै तो हैं हमारे ही हमारे हमारे हो और
हम उनही की उनही की उनही की हैं॥

(६१)

नेम व्रत सजम कै आसन अखड लाइ
सांसनि कौं घूटिहै जहा लौ गिलि जाइगौ।
कहै रतनाकर धरैगी मृगछाला अरु
धूरि हू दरगी जऊ अग छिलि जाइगौ॥
पाच आचि हूं की झार झेलिहै निहारि जाहि
रावरौ हू कठिन करेजौ हिलि जाइगौ।
सहिहैं तिहारे कहैं सांसति सबै पै बस
यती कहि देहु कै कन्हैया मिलि जाइगौ॥

(६२)

साधि लैहैं जोग के जटिल जे विधान ऊधौ
बांधि लेहैं लकनि लपेटि मृगछाला हू।
कहै रतनाकर सु मेलि लहैं छार अग
झेलि लैहैं ललकि घनेरे घाम पाला हू॥
तुम तौ कही और अनकही कहि लीनो सबै
अब जो कहौ तौ कह कछु ब्रज-बाला हू।
ब्रह्म मिलिबै तैं कहा मिलव बतावौ हम
ताकौ फल जब लौ मिलै ना नन्दलाला हू॥

(६३)

साधिहै समाधि औ अराधिहै सबै जो कहौ
आधि-व्याधि सकल स-साध सही लैहैं हम।
कहै रतनाकर पै प्रेम-प्रन-पालन कौ
नेम यह निपट सछेम निरबैहै हम॥
जैहैं प्रान-पट लै सरूप मनमोहन कौ
तातैं ब्रह्म रावरे अनूप कौ मिलैहै हम।
जौपै मिल्यौ तौ धाइ चाय सौ मिलगी पर
जौ न मिल्यौ तौ पुनि इहा ही लौटि ऐहै हम॥

(६७)

धरि राखौ ज्ञान गुन गौरव गुमान गोइ
गोपिन कौं आवत न भावत भडग है।
कहै रतनाकर करत टाय-टाय वृथा
सुनत न कोउ इहाँ मुहचग है॥
और हू उपाय केते सहज सुढङ्ग ऊधौ
साँस रोकिबे कौ कहा जोग ही कुढङ्ग है।
कुटिल कटारी है उतङ्ग अति
जमुना-तरग है तिहारौ सतसङ्ग है॥

(६८)

प्रथम भुराइ चाय-भाय पै चढाइ नीके
न्यारी करी कान्ह कुल-कूल हितकारी तैं।
प्रेम रतनाकर की तरल तरङ्ग पारि
पलटि पराने पुनि प्रन-पतवारी तैं॥
और न प्रकार अब पार लहिबै कौ कछू
अटकि रही है एक आस गुनवारी तैं।
सोऊ तुम आइ बात विपम चलाइ हाय
काटन चहत जोग कठिन कुठारी तैं॥

(६९)

प्रेम-पाल पलटि उलटि पतवारी-पति
केवट परान्यौ कूब-तूँवरी अधार लै।
कहै रतनाकर पठायौ तुम्हें तापै पुनि
लादन कौं जोग कौ अपार अति भार लै॥
निरगुन ब्रह्म कहौ रावरौ बनैहै कहा
ऐहै कछु काम हूँ न लङ्गर लगार लै।
विपम चलावौ ज्ञान-तपन-तपी ना बात
पारौ कान्ह तरनी हमारी मझधार लै॥

(६४)

कान्ह हूँ सौं आन ही विधान करिवे कौ ब्रह्म
मधुपुरियान की चपल कखियाँ चहैं।
कहै रतनाकर हस कै कहौ रोवे अब
गगन-अथाह-थाह लेन मखिया चहै॥
अगुन-सगुन फंद-बन्द निरवारन कौं
धारन कौ न्याय की नुकीली नखियाँ चहैं।
मोर-पखियाँ कौ मोर-वारौ चारु चाहन कौ
ऊधौ अखिया चहैं न मोर-पखियाँ चहैं॥

(६५)

ढोंग जात्यौ ढरकि परकि उर सोग जात्यौ
जोग जात्यौ सरकि स-कँप कँखियानि तैं।
कहै रतनाकर न लेखते प्रपञ्च ऐंठि
बैठि धरा लेखते कहूँधौ नखियानि तैं॥
रहते अदेख नाहिं बेष वह देखत हूँ
देखत हमारी जान मोर पँखियानि तैं।
ऊधौ ब्रह्म ज्ञान कौ बखान करते न नैंकु
देख लेते कान्ह जो हमारी अँखियानि तैं॥

(६६)

चाव सौ चले हौ जोग-चरचा चलाइबै कौ
चपल चितौनि त चुवात चित-चाह है।
कहै रतनाकर पै पार ना बसैहै कछू
हेरत हिरैहै भर्‌यौ जो उर उछाह है॥
अडे लौं टिटेहरी के जैहै जू विवेक वहि
फेरि लहिबे को ताके तनक न राह है।
यह वह सिंधु नाहिं सोखि जो अगस्त लियौ
ऊधो यह गोपिन के प्रेम कौ प्रवाह है॥

(६७)

धरि राखौ ज्ञान गुन गौरव गुमान गोइ
गोपिन कौ आवत न भावत भडग है।
कहै रतनाकर करत टाय-टाय वृथा
सुनत न कोउ इहाँ मुहचग है ॥
और हू उपाय केते सहज सुढङ्ग ऊधौ
सास रोकिबे कौ कहा जोग ही कुढङ्ग है।
कुटिल कटारी है उतङ्ग अति
जमुना-तरग है तिहारौ सतसङ्ग है ॥

(६८)

प्रथम भुराइ चाय-नाय पै चढाइ नीके
न्यारी करी कान्ह कुल-कूल हितकारी तैं।
प्रेम रतनाकर की तरल तरङ्ग पारि
पलटि पराने पुनि प्रन-पतवारी तै ॥
और न प्रकार अब पार लहिबे को कछू
अटकि रही है एक आस गुनवारी तैं।
सोऊ तुम आइ वात विपम चलाइ हाय
काटन चहत जोग कठिन कुठारी तैं ॥

(६९)

प्रेम-पाल पलटि उलटि पतवारी-पति
केवट पराग्यौ कूब-तूवरी अधार लै।
कहै रतनाकर पठायौ तुम्हें तापै पुनि
लादन कौं जोग को अपार अति भार लै ॥
निरगुन ब्रह्म कहौ रावरौ बनैहै कहा
ऐहै कछु काम हूँ न लङ्गर लगार लै।
विपम चलावौ ज्ञान-तपन-तपौ ना वात
पारौ कान्ह तरनी हमारी मझधार लैं ॥

(७०)

प्रथम भुराइ प्रेम-पाठनि पढाइ उन
तन-मन कीन्हे बिरहागि के तपेला हैं।
कहै रतनाकर त्यो आप अब तापै आइ
सासनि की सांसति के झारत झमेला हैं ॥
ऐसे-ऐसे सुभ उपदेश के दिवैयनि की
ऊधौ ब्रजदेश में_अपेल रेल-रेला हैं।
वे तौ भए जोगी जाइ पाइ कूबरी कौ जोग
आप कहू उनके गुरू हैं किधौ चेला हैं ॥

(७१)

एते दूरि देसनि सौ सखनि-सदेसनि सौ
लखन चह जो दसा दुसह हमारी है।
कहै रतनाकर पै बिषम वियोग-विथा
सबद-विहीन भावना की भावबारी है ॥
आगै उर अतर प्रतीति तातै हम
रीति नीति निपट भुजगनि की न्यारी है।
आँखिनि तै एक तौ सुभाव सुनिबै कौ लियौ
काननि तै एक देखिबै की टेक धारी है ॥

(७२)

दौनाचल कौ ना यह छटक्यौ कनूका जाहि
छाइ छिगुनी पै छेम-छत्र छिति छायौ है।
कहै रतनाकर न कूबर बधू-वर कौ
जाहि रच राच पानि परिस गँवायौ है ॥
यह गरु प्रेमाचल दृढ-व्रत धारिनि कौ
जाके भर भाव उनहूँ कौ सकुचायौ है।
जानै कहा जानि कै अजान ह्वै सेजान कान्ह
ताहि तुम्है बात सौ उडावन पठायौ है ॥

(७३)

सुधि बुधि जाति उडी जिनकी उसास निसौ
तिनको पठायौ कहा धीर धरि पाती पर।
कहै रतनाकर त्यौं विरह-बलाय ढाइ
मुहर लगाइ गए सुख-थिर-थाती पर।।
और जो कियौ सो कियौ ऊधौ पै न कोऊ कियौ
ऐसौ घात घूनो करै जनम-सँघाती पर।
कूबरी की पीठ तैं उतारि भार भारी तुम्हैं
भेज्यौ ताहि थापन हमारी छीन छाती पर।।

(७४)

सुघर सलोने स्यामसुंदर सुजान कान्ह
करुना-निधान के बसीठ बनि आए हौ।
प्रेम-प्रनधारी गिरधारी को सनेसौ नाहिं
होत है अँदेश झूठ बोलत बनाए हौ।।
ज्ञान-गुन गौरव-गुमान-भरे फूले फिरौ
बचक के काज पै न रचक बराए हौ।
रसिक-सिरौमनि कौ नाम बदनाम करौ
मेरी जान ऊधौ कूर-कूबरी-पठाए हौ।।

(७५)

कान्ह कूबरी के हिय हुलसे सरोजनि तैं
अमल अनन्द मकरद जो ढरारे है।
कहै रतनाकर, यौं गोपी उर सचि ताहि
तामैं पुनि आपनौ प्रपञ्च रच पारै है।।
आइ निरगुन गाइ ब्रज मैं जो अब
ताकौ उद्‌गार ब्रह्मज्ञान रस गारै है।
मिलि सो तिहारौ मधु मधुप हमार नेह
देह मैं अछेह विष विषम बगारै है।।

(७६)

सीता असगुन कौं कटाई नाक एक बेरि
सोई करि कूब राधिका पै फेरि फाटी है।
कहै रतनाकर परेखौ नाहिं याकौ नैंकु
ताकी तौ सदा की यह पाकी परिपाटी है।।
सोच है यहै कै सग ताके रगभौन माहिं
कौन धौं अनोखौ ढङ्ग रचत निराटी है।
छाँटि देत कूबर कै आटि देत डाँट कोऊ
कानि देत खाट किधौं पाटि देत माटी है।।

(७७)

आए कसराइ के पठाए वे प्रतच्छ तुम
लागत अलच्छ कुब्जा के पच्छवारे हौ।
कहै रतनाकर बियोग लाइ लाई उन
तुम जोग बात के बवडर पसारे हौ।।
कोऊ अबलानि पै न ढरकि ढरारे होत
मधुपुरवारे सब एकै ढार ढारे हौ।
लै गए अक्रूर क्रूर तन तै छुडाइ हाय
ऊधौ तुम मन तै छुडावन पधारे हौ।।

(७८)

आए हौ पठाए वा छतीसे छलिया के इतै
बीस बिसै ऊधौ बीरबावन कलाँच ह्वै।
कहै रतनाकर प्रपञ्च न पसारौ गाढे
बाढे पै रहौगे साढे बाइस ही जाँच ह्वै।।
प्रेम अरु जोग मैं है जोग छठैं-आठैं पर्‌यो
एक ह्वै रहै क्यो दोऊ हीरा अरु काँच ह्वै।
तीन गुन पाच तत्त्व बहकि बतावत सो
जैहै तीन-तेरह तिहारी तीन-पाँच ह्वै।।

(७६)

कस के कहे सो जदुबस को बताइ उन्हें
तैसे ही प्रससि कुब्जा पै ललचायौ जौ।
कहै रतनाकर न मुष्टिक चन्र आदि
मल्लनि कौ ध्यान आनि हिय कसकायौ जौ ।।
नद जसुदा की सुखमूरि करि धूरि सबै
गोपी ग्वाल गैयनि पै गाज लै गिरायौ जौ।
होते कहूँ क्रूर तौ न जानें करते धौ कहा
एतो क्रूर करम अक्रूर ह्वै कमायौ जौ ।।

(८०)

चाहत निकारन तिन्है जो उर-अतर तै
ताकौ जोग नाहिं जोगमन्तर तिहारे मै।
कहै रतनाकर बिलग करिबे मैं होति
नीति विपरीत महा कहति पुकारे मे ।।
तातें तिन्हे ल्याइ लाइ हिय तै हमारे बेगि
सोचियै उपाय फेरि चित्त चेतवारे मैं।
ज्यौ ज्यौ बसे जात दूरि दूरि प्रिय प्रान मूरि
त्यौ त्यौ धँसे जात मन-मुकुर हमारे मैं ।।

(८१)

ह्या तौ ब्रजजीवन सौं जीवन हमारौ हाय
जाने कौन जीव ल उहाँ के जन जनमे।
कहै रतनाकर बतावत कछू कौ कछू
ल्यावत न नेकु हूँ विवेक निज मन मे ।।
अच्छिनि उघारि ऊधौ करहु प्रतच्छ लच्छ
इत पसु पच्छिनि हूँ लाग है लगन मैं।
काहू की न जीहा करै ब्रह्म की समीहा सुनौ
पीहा पीहा रटत पपीहा मधुवन मैं ।।

(८२)

बाढ्यौ ब्रज पै जो ऋन मधुपुर-बासिनि कौ
तासौं ना उपाय काहूँ भाय उमहन कौं।
कहै रतनाकर बिचारत हुती सी हम
कोऊ सुभ जुक्ति तासौं मुक्त ह्वै रहन की ॥
कीयौ उपकार दौरि दोउनि अपार ऊधौ
सोई भूरिभार सौं उबारता लहन कौं।
लै गयौ अक्रूर क्रूर तब सुख मूर कान्ह
आए तुम आज प्रान-ब्याज उगहन कौं ॥

(८३)

पुरती न जोपै मोर चंद्रिका किरीट काज
जुरती कहा न कांच किरचैं कुभाय की।
कहै रतनाकर न भावते हमारे नैन
तौ न कहा पावते कहूँधौं ठाय पाय की ॥
मान्यौ हम मान कै न मानती मनाऐं बेगि
कीरति कुमारि सुकुमारी चित-चाय की।
याही सोच माँहि हम दूबरी कै कहा
कबरी हू होती न पतोहू नन्दराय की ॥

(८४)

हरि तन पानिप के भोजन दृगंचल तैं
उमगि तपन के तपाक बरि धावै ना।
कहै रतनाकर त्रिलोक-ओकमंडल मैं
बेगि ब्रह्मद्रव उपद्रव मचावै ना ॥
हर कौ समेत हर गिरि के गुमान गारि
पल मैं पतालपुर पैंठन पठावै ना।
फैलै बरसाने मैं न रावरी कहानी यह
बानी कहूँ राधे आधे कान सुनि पावै ना ॥

(८५)

आतुर न होहु ऊधौ आवति दिवारी अबै
बैसियै पुरदर-कृपा जौ लहि जाइगी।
होत नर ब्रह्म ब्रह्म-ज्ञान सौं बतावत जो
कछु इहि नीति की प्रतीति गहि जाइगी।।
गिरिवर धारि जो उबारि ब्रज लीन्यौ बलि
तौ तौ भाति काहूँ यह बात रहि जाइगी।
नातरु हमारी भारी बिरह-बलाय सग
सारी ब्रह्म-ज्ञानता तिहारी बहि जाइगी।।

(८६)

आवत दिवारी बिलखाइ ब्रज-वासी कहै
अबक हमारै गाव गोधन पुजैहै को।
कहै रतनाकर विविध पकवान चाहि
चाह सौ सराहि चख चचल चलैहै को।।
निपट निहारे जोरि हाथ निज साथ ऊधौ
दमकति दिव्य दीपमालिका दिखैहै को।
कबरी के कूबर ते उबरि न पावे कान्ह
इन्द्र-कोप-लोपक गुवधन उठैहै को ।।

(८७)

बिकसित बिपिन बसतिकावली को रग
लखियत गोपिन के अग पियराने मैं।
बौरै बृद लसत रसाल बर बारिनि के
पिक की पुकार है चबाव उमगाने मैं।।
होत पतझर झार तरुनि-समूहनि कौ
बैहरि बतात लै उसास अधिनाने मैं।
काम-विधि बाम की कला मैं मीन-मेष कहा
ऊधो नित बसत बसन्त बरसाने मैं।।

(८८)

ठाम ठाम जीवनविहीन दीन दीशै सबै
चलित चवाई-वात तापत घनी रहै।
कहै रतनाकर न चैन दिन-रैन परै
सुखी पत-छीन भई तरुनि अनी रहै॥
जारयो अग अब तौ विधाता है इहा कौ भयो
तातैं ताहि जारन की ठसक ठनी रहै।
बगर-बगर वृपभान के नगर नित
भीपम प्रभाव ऋतु ग्रीपम बनी रहै॥

(८९)

रहित सदाई हरियाई हिय-घायनि म
ऊरध उदास सो झकोर सो पुरवा की है।
पीव पीव गोपी पीर-पूरित पुकारति है
सोई रतनाकर पुकार पपिहा की है॥
लागी रहै नैनहि सी नीर की झरी औ
उठै चित म चमक सो चमक चपला की है।
बिनु घनस्याम धाम धाम व्रज मण्डल में
ऊधौ नित वसति वहार बरसा की है॥

(९०)

जात घनस्याम के ललात दृग कज पाँति
घेरी दिख-साध भार-भीर की अनी रहै।
कहै रतनाकर बिरह बिछु बाम भयो
चन्द्रहास तानै घात घातल घनी रहै॥
सीत-घाम वरपा-विचार विनु आनै व्रज
पचबान-बाननि की उमड ठनी रहै।
काम बिधना सौं लहि फरद दवामी सदा
दरद दिवैया ऋतु सरद बनी रहै॥

(९१)

रीते परे सकल निषंग कुसुमायुध के
दूर दुरे कान्ह पै न तातैं चलै चारौ है।
कहै रतनाकर बिहाइ बर मानस कौ
लीन्यौ है हुलास-हंस बास दूरिवारौ है॥
पाला परे आस पै न भावत बतास बारि
जात कुम्हलात हियौ कमल हमारौ है।
षट ऋतु ह्वै है कहूँ अवत दिगतनि मैं
इत तौ हिमंत कौ निरन्तर पसारौ है॥

(९२)

कांपि-कांपि उठत करेजौ कर चांपि-चांपि
उर ब्रजबासिनि कै ठिठुर ठनी रहै।
कहै रतनाकर न जीवन सुहात रंच
पाला की पटास परी आसनि घनी रहै॥
बारिनि मैं बिसद बिकास ना प्रकास करै
अलिनि बिलास मैं उदासता सनी रहै।
माधव के आवन की आवति न बातैं नैंकु
नित प्रति तातैं ऋतु सिसिर बनी रहै॥

(९३)

माने जब नैंकु ना मनाऐं मनमोहन के
तोपैं-मन-मोहिनि मनाए कहा मानौ तुम।
कहै रतनाकर मलीन मकरी लौं नित
आपुनौंही जाल अपने ही पर तानौ तुम॥
कबहूँ परे न नैन-नीर हूँ के फेर माँहि
पैरिबौ सनेह सिंधु माँहि कहा ठानौ तुम।
जानत न ब्रह्म हूँ प्रमानत अलच्छ ताहि
तोपै भला प्रेम कौं प्रतच्छ कहा जानौ तुम॥

(९४)

हाल कहा बूझत बिहाल परी बाल सबै
बसि दिन द्वैक देखि दृगनि सिधाइयो।
रोग यह कठिन न ऊधौ कहिबै के जोग
सूधौ सो सन्देस याहि तू न ठहराइयो॥
औसर मिलै औ सर-ताज कछु पूछहि तौ
कहियौ कछू न दसा देखी सो दिखाइयौ।
आह कै कराहि नैन नीर अवगाहि कछू
कहिबै कौं चाहि हिचकी लै रहि जाइयौ॥

(९५)

नंद जसुदा औ गाय गोप गोपिका की कछू
बात वृषभान-भौन हूँ की जनि कीजियौ।
कहै रतनाकर कहति सब हा हा खाइ
ह्याँ के परपंचनि सौं रंच न पसीजियौ॥
आस भरि ऐहै औ उदास मुख ह्वै हाय
ब्रज-दुख-त्रास की न तातै साँस लीजियौ।
नाम को बताइ औ जताइ गाम ऊधौ बस
स्याम सौं हमारी राम-राम कहि दीजियौ॥

(९६)

ऊधौ यहै सूधौ सौ सँदेस कहि दीजौ एक
जानति अनेक न बिबेक ब्रज-बारी हैं।
कहै रतनाकर असीम रावरी तौ क्षमा
छमता कहाँ लौं अपराध की हमारी हैं॥
दीजै और ताजन सबै जो मन भावै पर
कीजै न दरस रस बंचित बिचारी हैं।
भली हैं बुरी हैं औ सलज्ज निरलज्ज हू हैं
जो कहै सो हैं पै परिचारिका तिहारी हैं॥

उद्धव के ब्रज से बिदा होते समय के कवित्त

(९७)

धाई जित-तित तैं बिदाई-हेत ऊधव की
गोपी भरी आरति सँम्हारति न साँसुरी।
कहै रतनाकर मयूर-पच्छ कोऊ लिए
कोऊ गुंज-अंजलि उमाहे प्रेम आँसुरी॥
भाव-भरी कोऊ लिए रुचिर सजाव दही
कोऊ मही मंजु दाबि दलकति पाँसुरी।
पीत पट नंद जसुमति नवनीत नयौ
कीरति-कुमारी सुरवारी दई बाँसुरी॥

(९८)

कोऊ जोरि हाथ कोऊ नाइ नम्रता सौं माथ
भापन की लाख लालसा सौं नहिं जात है।
कहै रतनाकर चलत उठि ऊधव के
कातर ह्वै प्रेम सौं सकल महि जात है॥
सबद न पावत सो भाव उमगावत जो
ताकि-ताकि आनन ठगे से ठहि जात है।
रंचक हमारी सुनौ रंचक हमारी सुनौ
रंचक हमारी सुनौ कहि रहि जात हैं॥

(९९)

दाबि-दाबि छाती पाती-लिखन लगायौ सबै
ब्यौंत लिखिबै कौ पै न कोऊ करि जात हैं।
कहै रतनाकर फुरति नाहिं बात कछू
हाथ धरयौ ही तल थहरि थरि जात है॥
ऊधौ के निहोरैं फेरि नैकु धीर जोरैं पर
ऐसो अन्त ताप कौ प्रताप भरि जात है।
सूखि जाति स्याही लेखिनी कैं नैकु डंक लागैं
अंक लागैं कागद बररि बरि जात है॥

(१००)

कोऊ चले काँपि संग कोऊ उर चाँपि चले
कोऊ चले कछुक अलापि हलबल से।
कहै रतनाकर सुदेश तजि कोऊ चले
कोऊ चले कहत सन्देस अविरल से॥
आँस चले काहू के सु काहू के उसास चले
काहू के हियँ पै चन्दहास चले हल से।
ऊधव के चलत चलाचल चली यौं चल
अचल चले औ अचले हू भए चल से॥

(१०१)

दीन्यौ प्रेम-नेम-गरुवाई गुन ऊधव कौ
हिय सौं हमेव-हरुवाई बहिराइ कै।
कहै रतनाकर त्यौं कंचन बनाई काय
ज्ञान-अभिमान की तमाई बिनसाइ कै॥
बतानि की धोंक सौं धमाइ चहूँ कोदनि सौं
निज बिरहानल तपाइ पघिलाइ कै।
गोप की बधूटी प्रेम-बूटी के सहारे मारे
चल चित-पारे की भसम मुरकाइ कै॥

※

उद्धव के ब्रज से लौटते समय के कवित्त

(१०२)

गोपी, ग्वाल, नंद, जसुदा सौं तौ बिदा ह्वै उठे
उठित न पाय पै उठावत डगत है।
कहै रतनाकर सँभारि सारथी पै नीठि
दीठनि बचाइ चाल्यौ चोर ज्यौं भगत है॥
कुंजनि की कूल की कलिंदी की रुएँदी दसा
देखि-देखि आँस औ उसाँस उमगत हैं।
रथ तैं उतरि पथ पावन जहाँ ही तहाँ
बिकल बिसूरि धूरि लोटन लगत हैं॥

(१०३)

भूले जोग-छेम प्रेम-नेमहिँ निहारि ऊधौ
सकुचि समाने उर-अन्तर हरास लौं।
कहै रतनाकर प्रभाव सब ऊने भए
सूने भए नैन बैन अरथ-उदास लौं॥
माँगी बिदा माँगत ज्यौं मीच उर भीचि कोऊ
कीन्यौ मौन गौन निज हिय के हुलास लौं।
बिथकित साँस-लौं चलत रुकि जात फेरि
आँस लौं गिरत पुनि उठत उसास लौं॥

※

उद्धव के मथुरा लौट आने के समय के कवित्त

(१०४)

चल-चित-पारद की दम्भ कचुली कै दूरि
ब्रज-मग धूरि प्रेम-मूरि सुभ-सीली लै।
कहै रतनाकर सु जोगनि विधान भावि
अमित प्रमान ज्ञान गन्धक गुनीली लै॥
जारि घट-अन्तर ही आह-धूम धरि सबै
गोपी विरहागिनि निरन्तर जगीली लै।
आए लौटि ऊधव विभूति भव्य भायनि की
भायनि की रुचिर रसायन रसीली लै॥

(१०५)

आए लौटि लज्जित नवाए नैन ऊधौ अब
सब सुख साधन कौ सूधौ सौ जतन लै।
कहै रतनाकर गवाए गुन गौरव औ
गरब-गढ़ी कौ परिपूरन पतन लै॥
छाए नैन नीर पीर-कसक कमाए उर
दीनता अधीनता के भार सौ नतन लै।
प्रेम-रस रुचिर बिराग-तूमड़ी मैं पूरि
ज्ञान-गूदड़ी मैं अनुराग सौ रतन लै॥

(१०६)

आए दौरि पौरि लौं अवाई सुनि ऊधव की
और ही बिलोकि दसा दृग भरि लेत हैं।
कहै रतनाकर बिलोकि बिलखात उन्हैं
येऊ कर काँपत करेजैं धरि लेत हैं॥
आवति कछूक पूछिबे औ कहिबे की मन
परत न साहस पै दोऊ दरि देत हैं।
आनन उदास साँस भरि उकसौहैं करि
सौहैं करि नैननि निचौहैं करि लेत हैं॥

उद्धव-शतक

(१०७)

प्रेम-मद-छाके पग परत कहाँ के कहाँ
थाके अंग नैननि सिथिलता सुहाई है।
कहै रतनाकर यों आवत चकात ऊधौ
मानौ सुधियात कोउ भावना भुलाई है॥
धारत धरा पै ना उदार अति आदर सौं
सारत बँहोलनि जो आस-अधिकाई है।
एक कर राजै नवनीत जसुदा को दियौ
एक कर बंसी वर राधिका पठाई है॥

(१०८)

ब्रज-रजरंजित सरीर सुभ ऊधव कौ
धाइ बलबीर ह्वै अधीर लपटाये लेत।
कहै रतनाकर सु प्रेम-मद-माते हेरि
थरकति बाँह थामि थहरि थिराए लेत॥
कीरति कुमारी के दरस-रस सद्य ही की
छलकनि चाहि पलकनि पुलकाए लेत।
परन न देत एक बूँद पुहुमी की कोंछि
पोंछि-पोंछि पट निज नैननि लगाए लेत॥

ब्रज से लौटने पर उद्धव-वचन श्री भगवान्-प्रति

(१०९)

आँसुनि की धार औ उभार कौं उसासनि के
तार हिचकीनि के तनक टरि लेन देहु।
कहै रतनाकर फुरन देहु बात रंच
भावनि के विषम प्रपंच सरि लेन देहु ॥
आतुर ह्वै और हू न कातर बनावौ नाथ
नैसुक निवारि पीर धीर धरि लेन देहु।
कहत अवैं हैं कहि आवत जहाँ लौं सबै
नैकु थिर कढत करेजौ करि लेन देहु ॥

(११०)

रावरे पठाए जोग देन कौ सिधाए हुते
ज्ञान गुन गौरव के अति उद्गार मैं।
कहै रतनाकर पै चातुरी हमारी सबै
कित धौं हिरानी दसा दारुन अपार मैं ॥
उड़ि उधिरानी किधौ उरध उसासनि मैं
बहि धौ बिलानी कहू आसुनि की धार मैं।
चूर ह्वै गई धौ बिरहानल की झार मै।
छार ह्वै गई धौ बिरहानल की झार मैं ॥

(१११)

सीत घाम-भेद खेद सहित लखाने सबै
भूले भाव भेदता-निषेधन विधान के।
कहै रतनाकर न ताप ब्रजबालनि के
कालो मुख-ज्वाल ना दवानल समान के ॥
पटकि पराने ज्ञान गठरी तहाँ ही हम
थमत बन्यो न पास पहुचि सिवान के।
छाले परे पगनि अधर पर जाले परे
कठिन कसाले परे लाले परे प्रान के ॥

उद्धव-शतक

(११२)

ज्वालामुखी गिरि तें गिरत द्रवे द्रव्य कैंधौ
बारिद पियौ है बारि विष के सिवाने मैं।
कहै रतनाकर कै कालो दाव लेन-काज
फेन फुफकारें उहिं गावैं दुख-साने मैं॥
जीवन बियोगिनि कौ मेघ अचयौ सो किधौ
उपच्यौ पच्यौ न उर ताप अधिकाने में।
हरि-हरि जासों बरि बरि सब बारी उठै
जानें कौन बारि बरसत बरसाने मैं॥

(११३)

लैके पन सूछम अमोल जो पठायौ आप
ताको मोल तनक तुल्यौ न तहा साँठी तें।
कहै रतनाकर पुकारें ठौर-ठौर पर
पौरि वृषभानु की हिरान्यौ मति नाठी तें॥
लीजै हेरि आपुहिं न हेरि हम पायौ फेरि
याहि फेर माहि भए माठी दधि आँठी तें।
ल्याए घूरि पूरि अंग अगनि तहाँ की जहाँ
ज्ञान गयौ सहित गुमान गिरि आठी तें॥

(११४)

ज्योंही कछु कहन सन्देश लग्यौ त्योंहि लख्यौ
प्रेम पूर उमगि गरे लौ चढयौ आवै है।
कहै रतनाकर न पाँव टिकि पावै नैकु
ऐसौ दृग-द्वारनि स-वेग बढ्यौ आवै है॥
मधुपुरि राखन कौ वेगि कछु ब्यौंत गढौ
धाइ चढौ वट कै न जोपै गढयौ आवै है।
आयौ भज्यौ भूपथिभगीरथ लौं हौं तौं नाथ
साथ लग्यौ सोई पुन्य-पाप बढयौ आवै है॥

(११५)

जैहै व्यथा विषम विलाइ तुम्हैं देखत ही
तातें कही मेरी कहुँ झूठि ठहरावौ ना।
कहै रतनाकर न याही भय भायँ भूरि
याही कहैं जावौ बस विलम्ब लगावौ ना॥
एतौ और करत निवेदन स वेदन हैं
याकौ कछु बिलग उदार उर ल्यावौ न।
तब हम जानैं तुम धीरज धुरीन जब
एक वार उधौ बनि जाइ पुनि जावौ ना॥

(११६)

छावते कुटीर कहुँ रम्य जमुना कै तीर
गौन नौन-रेती सौ कदापि करते नही।
कहै रतनाकर बिहाइ प्रेम गाथा गूढ़
स्रौन रसना मे रस और भरते नही॥
गोपी ग्वाव वालनि के उमडत आँसू देखि
लेखि प्रलयागम हूँ नैकु डरते नही।
होतौ चित्त चाव जो न रावरे चितावन को
तजि व्रज-गाँव इतै पाव धरते नही॥

(११७)

भाठी के बियोग जोग जटिल लुकाठी लाइ
लाग सो सुहाग के अदाग पिघलाए हैं।
कहै रतनाकर सुवृत्त प्रेम-साँचे माँहि
काचे नेम संजम निवृत्त कै ढराए हैं॥
अब परि बीच खीचि विरह मरीचि-बिम्ब
देत लव लाग यौ गुबिंद उर लाए हैं।
गोपी-ताप-तरुन-तरनि किरनावलि कै
ऊधव नितांत कान्त-मनि बनि आए हैं॥

इति श्री उद्धव-शतक

शब्दार्थ

मगलाचरण

जामों = जिससे। जाति = चली जाती है। विपय सासारिक = विपय वासनाए। विपाद = दुख। चो = चाव, उत्साह। चारु = सुदर। गहिबो करै = ग्रहण किया करता है। कवित्त = काव्य। वर श्रेष्ठ। व्यजन = व्यजनवण, भोज्य पदाथ। रुचिर = सुदर। जागति = प्रज्वलित होती है। अनूप = अनुपम। जडता = माया-मोह निश्चेतनता। तोम = समूह। दहिबो करै = भस्म हा जाता है। जयति = जय हो। रावरी = आपकी। सनेह = स्नेह, तेल घत। लाहिबो करै = प्राप्त किया करें।

१ जल जात = कमल। अघ = नीचे का भाग। ऊरध = ऊपर का भाग। उमहि = उमग म भरकर। गाहि = पकडकर। बास—बासना = सूघने की इच्छा नैकु = थोडा। पाय परे उखारि = लडखडाकर गिर पडे। अभाय = विकलता। द्वैक = दो एक। जगाइ = चतन्य। कीर = तोता। औचक = अचानक।

२ भुज-बध = भुजावेष्ठन, हाथो को गले म डाले हुए। कदली वन = केलो का वन। मतग = हाथी। मताए = मतवाले होकर। लौं = समान। नए सिर सौं = नतमस्तक होकर, फिर से। नीकै = भली भाँति। नेह = प्रेम।

३ पौरि = पौरी, द्वार, ड्योढी। गुनन = सोचना। जौला = जब तक। अकुलानि = व्यग्रता। उठानि = प्रारम्भ। उमगि = उमडकर। मिचो = रुद्ध हाना। है = होना।

४ बिथा = वेदना। अकथ = अकथनीय। अथाह = अगाध। प्रवीन = चतुर। सुकवीन = सुकवियो। बुझावन = समझावें। गहबरि आयौ गयौ = गला भर आया। भभरि = उमडकर। बैननि = वाणी। नैननि सौं = नेत्रो से।

५ प्रेमपग = प्रेम से युक्त। लाड = दुलार। सुधाकर = चद्रमा। प्रभा = आभा। मढी = मडित। मृगनैननि = मृग के समान सुदर नत्र वाली गोपिकाए। कछारनि = नदी किनारे की हरी भरी भूमि। रग = उत्सव। रस = आनद-केलि। रारनि = तकरार। बिपिन विहारिनि = वदावन विहार। हौस = तीव्र इच्छा। दुयसावती = उत्तेजित करती। सुधि = स्मृति। सुख रासिनि = सुख का भण्डार। नित = नित्य।

६ चलन न चरियौ = कोई उपाय नही चलता। कोटिनि = करोडो। हारयौ = थक गया। टारयो = इधर-उधर हिलना। टसकत = हिलता। गहीली = ग्रहण

करने वाली। चिमटी=पकडकर, खीचने का औजार (वासुदेव और देवकी जिसके दो पक्ष हैं) कढ़त=निकलता है। विथेक=थक गए। आक=अक, अकौआ। धीर–क्षीर, दूध। बिलसानि=सुखोपभोग। धँस्यौ=घुसना। करेज=हृदय म लौं=समान।

७ रूप रस=गोपिया के रूप-सौन्दय का मधुरामृत। अघात=तप्त हाना। हुते=होत। आँस=अश्रु। जुडात=शीतल हाना, तुष्ट होना। अँवा=मिट्टी के बतन पकाने की कुम्हार की भटटी। अवाँ सौ घिरबौ=अँवाँ की तरह चारा आर से जलना असह्य दाह का अनुभव करना। हर=देखना। हेरिबोई=देखन की शक्ति को। हिरिबौ कर=भूल जात हैं, खो जात हैं। जाम=प्रहर। घिरिबौ और=घूमा करत ह।

८ गल-गैल=गली-गली। गैल गैल=साथ-साथ। गोरस=१ दूध, दही, मट्ठा २ इन्द्रिय-आनन्द। काज=लिए। रिझाइबौ=आकर्षित करना। नवेलिनि=नवयुवती, मुग्धाबाला। स्रमहार=परिश्रम अथवा रति आदि से उत्पन्न शिथिलता को मिटाना। कीबौ=करना। मनुहार=किसी का मान छुडाने और प्रसन्न करने के लिए की गई अनुनय विनय।

९ मोर के पखोवनि कौ=मयूरपखो का। छबीलौ=शोभायुक्त, सुन्दर कीट=किरीट, राजमुकुट। माखन-सनेही=माखन से प्रेम करन वाली गोपिया, स्निग्ध=नवनीत। षटरस व्यजन=छ प्रकार के रसा ■ युक्त (मधुर, लवण, तिक्त, कटु, कषाय तथा अम्ल)। विरहानल=वियोगाग्नि। हरि=हरण कर। सुर-वृन्द=देवगण। बलाइ=विपत्ति, कष्ट। गोविन्द=गोपो का स्वामी। गुपाल=गायो का पालन करने वाला। बिहाइ=छोडकर। त्रिलोक=तीन लोक।

१० मजु=सुन्दर। मनि-पुजनि=मणि-समूह। गुजनि=घुघुची। मिसाल=उदाहरण, उपमा। छावना=धारण नही कर सकती, अच्छी नही लगती। रतन-मैं=रत्न जडित। अच्छ=अच्छा। अच्छ=अक्ष, आख। लच्छ-असइ=लाखवें बार के बराबर भी। काम धेनु=पुराणो के अनुसार कामधेनु चौदह रत्नो के साथ समुद्र-मथन के समय निकलती हुई गाय है जो प्रत्येक अभिलषित वस्तु प्रदान करती है। गूढ=गम्भीर छिपा हुआ। कनूका=कण। विलोकन=देखने मे। मलया=मलाई की मटकी।

११ रतनाकर=समुद्र, कवि का उपनाम। उमगत=उमडता है। विरहातप=विरह की उष्णता। पचण्ड=भयकर तीव्र। उसास=उच्छ्वास। झकोर=झझावत, आधी-तूफान। जगत=जगना, उठना। केवट=नाविक। पचि=परिश्रम करके। गुन-पाल=रस्सी तथा पाल विवेक आदि गुण। अवगत=आकाश मे उड जाना, लुप्त हो जाना। लगर=जहाज या नाव का रोकने का एक साधन। डगि डगमगाकर।

१२ सील सनी प्रेम भरी, आर्द्रता-युक्त। सु-बात=सुन्दर बातें, सुन्दर वायु। पूरब की=पूर्व दिशा की, पुरानी। औरे=विलक्षण, अन्य ही। ओप=चमक, दीप्ति। दृगनि=नैन, दिशाएं। मिडुराने=अर्धनिमीलित, घिरना, छा जाना। चमक=टीस एकाएक उठने वाला दर्द, बिजली की चमक। उर=हृदय, मध्य। घनश्याम=कृष्ण, काले काले बादल। अधीर=अस्थिर। अकुलाने=व्याकुल। आसाछन्न=आशा भग्न हो जाने से, दिशाएं आच्छादित हो जाने से। दुरदिन=बुरे दिन, मघाच्छन्न दिन। दीस्या=दिखाई पड़ा। सुरपुरमाहिं=देव लोक में, आकाश में। बारि=बालाएँ, वाटिकाएँ। हरियान त=प्रसन्न होने से, हरा भरा होने से। नीर की प्रवाह=अश्रुधारा। तीर=किनारा। अचल पवन। रसाने त=धीरे-धीरे बहने या टपकने से, द्रवीभूत होने से।

१३ कातरता=व्याकुलता, विकलता। अवाइ=अवाक, मौन। सरके=खिसक गए। भूरि=अत्यधिक। भीति=भय। फनिंद=फणीन्द्र, शेषनाग। करके=कड़क गए चटक गए। सुरराज=देवताओं का राजा, इन्द्र। धाए=दौड़कर जाना। धाम=घर। बिधि ब्रह्मा। हर=महादेव। बामनि=स्त्रियां। बाम=बाएँ।

१४ हेत=प्रेम। खेत=क्षेम। गापि=छिपाना, रखना। गमनौ नहीं=जाना नहीं, चलना नहीं। करनी=हथिनी। प्रतीति काज=विश्वास के लिए। करनी=कार्य। ताहि=उसके। घात=मौके की तलाश। बिसासी=विश्वास-घाती। छनौ नहीं=मत फंसा। बारनि कितेक=कितनी बार। बारनि कितक करें=कितना निषेध करें। बारन उबारन=गण के उद्धारक। बारन=हाथी।

१५ पाँचो तत्त्व=पंच तत्त्व=क्षिति, जल पावक, गगन, समीर। तत्त्व=सार-तत्त्व (ब्रह्म)। तत्त्व ज्ञान=सृष्टि विज्ञान ब्रह्मज्ञान वेदान्त के अनुसार अविद्या का नाश और वस्तु का वास्तविक स्वरूप पहचानना ही तत्त्व ज्ञान है। श्रुति=वेद, निगम आदि। गायौ=विस्तार से वर्णन करना। भेद=रहस्य। पंच भौतिक=क्षिति, जल आदि सृष्टि रचना के मूल उपकरण। एक भाव=समभाव अद्वैत भावना। सचोप=मोल्लास। आप ही सौं आपुकौ=स्वयं का स्वयं से ब्रह्म का ब्रह्म (जीव) से क्योंकि दोनों में एक तत्त्व विद्यमान है। बिछोह=वियोग। ठायौ=गहराई।

१६ दिपत=प्रकाशमान। दिवाकर=सूर्य। तुमसन=तुमसे। थाह=गहराई। असत=मिथ्या। पसार=प्रसार, सृष्टि। जागत=जाग्रतावस्था में। पागत=लिप्त होना। परपचनि=प्रपंच, सांसारिक झमेला। लहियौ कर=समझते हैं, प्राप्त करते हैं।

१७ टोक=रोक, बाधा। बिशद=विशाल। इमि=इस प्रकार। अहरि=अँचकर सागर के समान चचल, हृदय को स्थिर करके। हीतल=हृदय तल।

समन = शमन करना, शान्त करना। पुचारे = लेप, सान्त्वना देना, पुचकारना। नालिका = नली।

१८ प्रेम नेम = प्रेम का व्रत। निवारि = हटाकर। उर अंतर तैं = हृदय के भीतर से। निधान = सागर। जोति = ब्रह्म ज्योति। जोइ = देखकर। जरि लहै = जल लेंगे, कष्ट सहन कर लेंगे। स्रवन = कान। सीख = उपदेश। सुधाकर मुखीनि = चन्द्रमुखियाँ।

१९ यन्त्र फूका = मन्त्र फूकना, जादू डालना। मन्त्र चार प्रकार के बताये गये हैं—मारण, मोहन, उच्चाटण और वशीकरण। यहाँ अंतिम से अभिप्राय है। हूक = कसक। भावनि = भावना। गहबर = अवरुद्ध, गह्वर। बढन = निकलना, अभिव्यक्त होना। नैन मग = नेत्र मार्ग से। अगवानी है = पहले ही। प्राकृत = नैसर्गिक, स्वाभाविक। पानी = जल, अश्रु। पलट = परिवर्तित होकर।

२० हियो = हृदय। मरस्यौई = निकल पड़ना। रस्यौई = बूंद-बूंद टपकना। रोम झिंझरीनि सौं = राम-कूपों से लोमछिद्रों से। आनन = मुख। दुवार = द्वार।

२१ रसति = रिसती हुई। भूरि = अधिक। हुलास = इच्छाएँ। उरात है = समाती है। सीरे शीतल, सुखद। वार्ता = १ धक्का २ सुयोग।

२२ पन = प्रण, सकल्प २ पण, सौदा। सुजस = सुकीर्ति। उछाह = उत्साह सभार म = नियन्त्रण म। छरकि = छलकना। ८८ हरै = धीरे धीरे। पजी = १ ज्ञानोपदेश २ धन। तमालनि = यमुना के किनारे या = पवतो पर मिलने वाला एक विशेष वृक्ष। बिरमानी = अटक गई थम गई। अरु = और। करीरनि = करील, पत्तो रहित झाड़ी। झारि = झाड़ी।

२३ गुमान = गर्व। घटि = घट। घटि जानि लग = कम जान पड़ने लग। जोग के विधान = योग की क्रियाएं अथवा अग—यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, और समाधि। पगपारत हीं = पैर पडते ही। ज्ञान मारतंड = ज्ञान रूपी सूर्य। मानस = १ मन २ मानस रोवर। सरस = सजल। सुहाए = शोभायुक्त। घनश्याम = १ कृष्ण २ मेघ।

२४ छाप = अंकित है। छाप = मुद्रा। छाप छाप एक = जिनके हृदय म एक ही ब्रह्म की मूर्ति अंकित है। सान = संयुक्त, अभिभूत। सोई = वही। आनि = आकर। सिवाने = सीमा। सिथिलित = शिथिल, आलस्ययुक्त। गर = गला। गरवाने = अवरुद्ध होना। पुलकि = प्रेम, हर्ष आदि से रोमांचित होना। पसीजि द्रवित होना। पास = पार्श्व, छाती। चापि = दबाकर। बयारि = हवा। बरसान = बरसाना, राधा का निवास-स्थान।

२५ म्व रही = आतप्रोत हो गई। बिलोकि = देखकर। खूवै रही = खो दिया, भूल गई। लेखि = मन ही मन हरहराकर। लेख = लिपि। तिन = उनर। ज्वै रही = देख रही हैं।

२६ झौरि झौरि=झुण्ड के झुण्ड। उझकि=उचक्कर। पद कजनि=चरण कमल। पजनि पै=पजा पर। पाती=पत्र। छोहनि=उत्कण्ठा। छवै=भरना।

२७ अपर=और। सनस=सन्देश। रसना=जिह्वा। जोग=भावी मिलन अवसर। निरास वासना=निराशा का भाव, निगुण भावना। उमाहि=उत्साहित होकर। साहि=निश्चय करके, स्थिर करके। उत=उधर। कराहि=कराहना, पीडा से आह भरना।

२८ गरि गौ=गल गया। गुमान=गव। गुणने स=कुण्ठित हो जाने से। सिहरने स=सहमे स। सम=शिथिल। सक्क=हक्के-बक्के स। सवै=शक्ति। भभरे=घबराये हुए। भकुवान मे=विक्त व्यविमूढ स, बौखलाये से। हौले से=धीरे स। हल=कंपित। हुल=लाठी आदि का सिरा। हते=मारे। हूल हूले स=लाठी आदि के गिरे का धक्का (बाएँ से)। हरे से=लुट से, खोए स। हिराने स—खाए हुए से।

२६ नासिब=नष्ट करन। पारि=डालकर। मति=बुद्धि। रति माती=प्रेम मे निमग्न। उधिरानी=नष्ट हो गई। विपम=१ दुखपूण २ विपरीत। ताती=१ कष्टदायक २ तप्त। बरी=प्रज्वलित। बाती=१ वार्ता २ बत्ती। अलच्छ=अलस्य। दुरे=छिप गए।

३० विलस्यो रहै=आनन्द के साथ सलग्न रह, ध्यानावस्थित रह। ध्यान—योग क आठ अगा म से एक जिसमे चित्त क प्रत्यय की धारणीय वस्तु के साथ एकाग्रता हो जाती है। सुअन्तरमुखी है ध्यान=बाह्य ध्यान को अन्तरमुखी साधना द्वारा अन्तकरण म ले जाकर। हिय कज—हृत्कमल, जिसम ब्रह्म स्वरूप नान ज्योति प्रज्वलित होती है। जगी=प्रकाशित। मजु हिय कज जगी=हृदय म सुन्दर कज कली खिल उठी, सहस्र कमल म ब्रह्म ज्योति जल उठी। धस्यौ रहै=लीन रह। जड चेतन विलास=जड और चेतन का आनन्द, सायुज्य मुक्ति की ओर सकेत है, ब्रह्म और सष्टि का सल। जाहत=दखत हो। विकस्यो रहै=प्रगटित होता रह। विक्षोभ, ब्रह्म क हृदय म विक्षोभ हाने पर सष्टि की निर्माण प्रक्रिया चलती है। छोहि=क्षुब्ध हाकर।

३१ समोई=व्याप्त। विभूति=वैभव, वह धूलि जिस योगी लगात है तथा सामान्य जना को लगाने के लिए ब्रह्म के प्रसाद रूप मे देत है। हू=भी। प्रभूतनि=प्राणिया म। पोई=गुथी हुई है पिरोई हुई हैं। माया=अविद्या। प्रपच=धाखा। भासत=प्रतीत होता है। प्रभेद=भेद, विभिन्नता, ब्रह्म एव जीव म तथा जीव जीव म जा भेद प्रतीत हाता है वह वास्तव मे भेद नही है अपितु भेद बुद्धि के कारण परिलक्षित होता है। फलकनि=टुकडे। भ्रम-पटल=भ्रम का आवरण, परदा।

३२ लखौं = देखो। घट = हृदय। वारिधि औ बूद = सागर और बूद, ब्रह्म और जीव, कृष्ण और गोपी। अविचल = नित्य स्थायी। बिलाप = रुदन। जुगती = उपाय, युक्ति। जुगावौ = संचित करो, एकत्र करो। छीन = क्षीण।

३३ थहरानी = कांपने लगी। थानहिं = अपने स्थान पर। थिरानी = स्थिर हो गई। रिसानी = क्रोधित हुई। बररानी = बड़बड़ाने लगी। बिलखान = विलाप करने लगी। बिथकानी = शिथिल हो गई। सेद साना = प्रस्वेद युक्त हो गई। बिललानी = तड़पने लगी। सुखानी = सूख गई।

३४ रस = १ आनंद, प्रेमरस २ भस्म, पारद आदि औषधियां। प्रयागनि = १ प्रसंग, प्रेमालाप २ रासायनिक प्रयोग। सुखद = १ सुख देने वाले २ आराम देने वाले। जोगनि = १ संयोग के २ रासायनिक औषधियों के योग के। उपचार = १ उपक्रम २ इलाज। चलावन की = १ चलाने की २ प्रयोग करने की। सुदर्शन = १ सुंदर दर्शन २ विषम ज्वर की अचूक औषधि माने जाने वाला चूर्ण विशेष। सुधि सिराइ है = १ स्मृति भूल गए हैं २ ध्यान भुला दिया है। उपाय = १ उपचार २ उपाय। सुभाव = १ स्वभाव २ गति। लखि = १ देख कर २ परीक्षा करके। नारिन = १ स्त्रियां २ नाड़ी। अनारिनि = १ अकुशल प्रेमी २ अकुशल वैद्य। पाती = १ पत्र २ चिट्ठी। विषम ज्वर = ज्वर विशेष, जिसके चढ़ने का समय नियत नहीं होता और इसमें तापमान तथा नाड़ी की गति परिवर्तित होती रहती है।

३५ कबधौं = कब तक। करेजो = हृदय। उराहनौ = उलाहना, उपालम्भ। सलोना = लावण्य युक्त।

३६ रजन = १ आनंदित करना २ रंजन करने वाले अर्थात् कृष्ण। नवनीत = मक्खन। बिरद = यश। पाकसासन = इन्द्र। पासनि = दिशाओं में, पार्श्वों में। पांसुरी उमाहि = पसलियां उभारकर, पसली फुला फुलाकर। कबौ = कभी।

३७ कधा = अथवा। आनि = विपरीत। अनारी = १ अनाड़ी २ जो नारी की न हो। अन्यारी = अभेदता। बिलहै = विलीन हो जाएगी।

३८ चोपि करि = सोत्साह। चढ़ायौ = आलेपन किया। तूरि = तुरही, सिंघा। दरिबौ कह्यौ = मलने के लिए कहते हो। रस रत्नाकर = १ रस के सागर कृष्ण २ रत्नाकर कवि का उपनाम। सनेह = १ प्रेमसहित २ तेल लगाकर। निवारयौ = सुलझाया। ता = उन। बच = केशों का। अरविंद = कमल। जटा जूट बांधिबौ चहौ = जटाओं का जूड़ा बनाकर लपटने के लिए कहते हो। काक पच्छवत = कौए की पांख के समान (समद्विबाहु त्रिभुजाकार) विकृत आकार वाला। ताइ गर्म किए हुए। धीर-नीर = धैर्य रूपी नीर। ब्रजचंद = चन्द्रमा की तरह ब्रज को शीतल करने वाले अर्थात् कृष्ण।

३९ चिंतामणि = चिंतामणि एक कल्पित रत्न है जो समस्त अभिलाषाओं को पूर्ण करने वाला माना जाता है। यहां पर सम्पूर्ण कामनाओं को पूर्ण करने वाले श्रीकृष्ण से अभिप्राय है। पँवारि = फेंककर। धूरि धारनि मे = धूलि की धाराओं में। कांच मन मुकुर = मन रूपी कांच का दर्पण। सास = बुलाने को। बयारि भखिबो = वायु का भक्षण करना, प्राणायाम करना। रूप रस हीन = अरूप, निर्गुण। निरुपि चुके = निरूपण कर चुके। पैय = पाइए। त्रिकुटी दोनों भौंहों के बीच कुछ ऊपर का स्थान, त्रिकुट चक्र का स्थान।

४० जोग = १ योग २ संयोग। दरस = दर्शन। दीयौ = दिया। दरिब = नष्ट करने को। टूक टूक = टुकड़े टुकड़े। भूलि हूं = भूलकर भी। बैन पाहन = वचन रूपी पत्थर। उजारयौ = उजाड़ दिया है।

४१ बुझाएँ = समझाने से। बया = व्यय। घावकरि = घाव करके। लौन = नमक। सौ = सा। कूटि = कूट कूटकर। लुनाई = नमक। लाइ = मिलकर। सुधाई = सीधापन।

४२ पींजर = पिंजड़े में। कानि = मर्यादा। गुन = १ गुण २ रस्सी। लंगर = नाव या जहाज को रोकने वाली भारी लोहे की बनी हुई वस्तु, बन्धन। टेक करि = प्रण करके। सास मूंदि = सांस रोककर, प्राणायाम से आशय है। बानक = वेश, भाग। मुक्ति मुकता = मुक्तिरूपी मोती। माल = तत्व। मानिक = माणिक्य। वारि चुकी = न्यौछावर कर चुकी।

४३ ब्याधि = व्यथा। गुनाकर = १ गुणों के समुद्र २ रज्जु राशि (रस्सी) मग = मार्ग। बय्यार = मार्ग में लूटने वाले, डाकू। टोल = टोली। लोल = चंचल उत्सुक। मुकति = १ मुक्ति २ मोती। बधूबर = श्रेष्ठ दुलहिन, कूबरी से आशय है। ऊबर भई = शेष बची रही। मधुपुर = मथुरा।

४४ परतच्छ = प्रत्यक्ष। प्रमान = प्रमाण, प्रमाण चार प्रकार के माने गए हैं —प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान और शब्द। ससा सिंग = खरगोश के सींग, अस्तित्व हीन वस्तु। भ्रम भौंर = भ्रम रूपी भंवर। भूप = राजा। अलख = अलक्ष्य, अरूप-रूप रहित निराकार।

४५ लखात = दिखाई देते हैं। ब्रह्मजोति = योग साधना के अंतर्गत पंचाग्नि। जगाइ = जलाकर। तातौं = उससे। सरिहै = सम्पन्न होगा। अनंग = कामदेव, कामदेव के सदृश्य सौन्दर्यशाली श्रीकृष्ण। साधि = साधना करके। साध = कामनाएं। अंग-रहित = कामदेव, निराकार ब्रह्म। अराधि = उपासना करके।

४६ बदन = मुख। गोधन गवाइहै = गोधन के गीत गवायेगा, दीपावली के दूसरे दिन गोवर्धन पूजा होती है तथा स्त्रियां और पुरुष मण्डली बनाकर गोधन के गीत गाते हैं। यह प्रथा ब्रज में आज भी प्रचलित है। भोरे = सरल स्वभाव वाले। बराइहै = दूर करेगा।

४७ बसन = वस्त्र। बासर = दिन। रमावै = रगना, रग लगाना। भुक्ति = भोग, विषय भोग।

४८ समाधि = योग का चरम फल, इस अवस्था म योगी प्राय पद्मासन लगाकर नेत्र मूदकर बैठ जाता है। उसका शरीर गतिहीन रहता है और ब्रह्म म अवस्थिति हो जाती है। यह चार प्रकार की कही गई है = १ सम्प्रज्ञात २ सवितर्क ३ सविचार, ४ आनद। निपट = नितान्त। निबेरी = निवृत्त, मुक्त। इतघौ = इधर को। साधना = शासन। जमा = पूजा, धरोहर। सुरपति = इन्द्र। कमेरी = दासी।

४९ अपबरग = मोक्ष। आन = लाना। सासनि = कष्ट।

५० जग सपनौ = अद्वैत वेदान्त के अनुसार जगत स्वप्न है, मिथ्या है। परत = प्रतीत होता है। बयात हो = बक रहे हो। जिमि = जिस प्रकार। जकौ = चकना, रट लगाना।

५१ बाद = व्यर्थ। सूधौबाद = सीधा मार्ग। काय = काया, स्वरूप। नसावै मौन = नष्ट मौन कर। ज्योति ज्वाल की ब्रह्म ज्योति की अग्नि म। जगाजग = चकाचौंध।

५२ वाही = उसी। मरीचै = किरणें। भानु = सूर्य। जुहारि = प्रणाम करके। बिरचे = बनाए हुए। बिरचि = ब्रह्मा, विधाता। सास = शान्ति। चरिबौ = आचरण करने को।

५३ प्रेम रतनाकर = १ प्रेम रूपी गभीर एव अथाह समुद्र २ कवि का उपनाम है। मीननि = मछलियाँ। इहि = इस। भव = ससार। गोपद = गाय के खुरा से बना हुआ गढा। मीच = मृत्यु। बिनु मीच = अकाल मृत्यु। बलाय = विपत्तियाँ। निकाय = समूह। धरक = डर, आशका।

५४ जमानै = समूह। भीति = भित्ति, दीवार। छात = छतें। घात = कष्ट ज्ञान छेम = ज्ञान के द्वारा कुशल मगल

५५ करक्यौ = कड़ककर टूटना। भगोही = भगवा रग की। भेष रच = वस्त्रों की रचना। रचिहै = रग हुए।

५६ उसीर = खस। पुलकावलि = रोमराजि। सीरो = शीतल। उसास =

५७ चमक = १ टास २ प्रकाश। अवरोहगी = अवरुद्ध करेगा। माहगी — शोभा दगी। मढत = धोखा देकर मूल्यहीन वस्तु को मूल्यवान बताकर जबरदस्ती दूसरे को सौपना।

५८ गिरि-सुगनि = १ पर्वत की चोटियाँ, २ सन्त, महात्मा, योगी आदि। तिहारी = तुम्हारी। कला = १ किरणें २ चतुराई। घटिहै = १ घटगी,

उद्धव शतक

२ चलेगी। तन-तूल = तिनके के बराबर भी। रसना = जिह्वा। बिहाइ = छोड कर। घनश्याम = १ कालेबादल २ कृष्ण।

५६ ख्याल = १ ध्यान २ क्रीडाए। अनय-रसवारे = १ अनयरसिक श्रीकृष्ण २ अत्यधिक रसपूर्ण। अखारे = अखाडा—यहा मचित होने से अभिप्राय है।

६० सुनी-गुनी समझी = श्रवण मनन और चिंतन कर। जिती = जितनी। कविताई—कविता, अयहीन बातें। त्रिकाल – तीन काल = भूत, वर्तमान तथा भविष्य। त्रिलोक = तीन लोक = स्वर्गलोक, मर्त्यलोक तथा पाताललोक। आनै = स्वीकार करना। आन = अन्यबात। त्रिदेव = तीन देवता— ब्रह्मा, विष्णु महेश। प्रतीति = विश्वास। त्रिवाचा = त्रिवचन, बल देने के लिए, किसी बात को तीन बार कहना। जी = हृदय।

६१ कै = करके। गिलि जाइगी = निगला जायगा। दरैगी = मलेंगी। पाचि-आचि = पचाग्नि—एक प्रकार का तप जिसमे ग्रीष्म ऋतु मे तपते सूर्य के नीचे बैठकर योगी अपने चारो ओर आग जला लेता है। झर = जलन। एती = इतनी।

६२ लकनि = कमर मे। मलि लहै = मल लेगी। छार = राख भस्म। ललकि = उत्साह से भरकर। घनेरे = घना, गम्भीर। घाम पाला = धूप और शीत, यहा कष्ट और विपत्तियो से अभिप्राय है। हू = भी। ताकी = उसका, योग साधना का।

६३ साधिहै = साधना करेंगी। अराधिहै = आराधना करेंगी। आधि = मानसिक व्यथा। व्याधि = शारीरिक कष्ट। निरबैहै = निवाह करेंगी। पट = परदा, वस्त्र। मिलहै = तुलना करेंगी। चाय = चाव।

६४ मधुपुरियान मथुरावाले। अगुन = निर्गुण। बन्द = गाठ। निरवास = मुलघाना। साय = १ सत्य २ तब। नखिया = नाखून बुद्धि। मौर-वारौ = मुकुट धारण करने वाला (श्रीकृष्ण)। मोर पखिया = मयूर पख अथवा मयूर पख की आखें, ज्ञान की बनावटी आखें।

६५ ढरकि = ढलकना। परकि = द्रवीभव होना। कखियानि = बगलें। लेखते = देखते। त = से कहूधा = किसी स्थान पर। बखान = वर्णन।

६६ चपल = चचला। चितौनि = चितवन। चुवान = टपका पडता। पारे न वसैहै = वश नही चलेगा। हिरहै = खो जाएगा। टिटेहरी = जल के किनारे बसने वाली एक छोटी चिडिया जिसका सिर लाल गर्दन सफेद पख चितकबरे, पीठ खैरे रग की दुम मिले-जुले रगो की और चोच काली होती है। तनक = जरा भी। अगस्त – अगस्त्य = ऋषिविशेष = इनके पिता का नाम मित्रावरुण था, उन्होने उर्वशी को देख काम पीडित हो वीर्यपात किया, जिससे अगस्त्य का जन्म

हुआ। तपस्या के बल से इन्होने एक ही घूट मे सागर का सारा जल पी लिया था।

६७ गोइ = छिपाकर। भडग = भाडपत। टाय-टाय = बकवास। मुह चग = डफ की तरह एक बाजा, व्यर्थ की बातचीत। सास रोकिबै = सास रोकना = १ मरने को २ प्राणायाम करने को। उतग = ऊचा। सतसग – अच्छा साथ = यहा कुसग के प्रति व्यग्योक्ति है।

६८ मुराइ भुलावा देकर। नाय = नाव। नीकै = भली प्रकार। न्यारी करी = अलग कर दिया। कूल = किनारा मर्यादा। पारि = डालकर। पराने = पलायन कर गए। पतवारो = नाव के पिछले भाग की ओर का एक अग जो कि तिकोने आकार का होता है। यह आधा जल म और आधा बाहर रहता है तथा बाहर वाले भाग मे एक डडा पडा रहता है जिसे पकडकर नाव घुमाई जाती है। गुनवारी = १ रस्सी २ गुणवाल कृष्ण। कुठारी = कुल्हाडी।

६९ पाल = एक लम्बा चौडा कपडा, जिसे नाव के मस्तूल से लगाकर इस लिए ताना जाता है ताकि उसमे हवा भर जाये और नाव को आगे बढने मे सहायता मिले। पतवारी = तलवार। पति = मर्यादा। पतवारी-पति = मर्यादा का रक्षक (कृष्ण)। केवट = मल्लाह। पराभ्यो = भाग गया। कूब = कूबड। तूबरी – तबी तरने मे सहायक होती है। निरगेन = १ निर्गुण २ रस्सी रहित। लगार = रस्सी, बधन। पारी = डाल दी है। तरनी = नाव।

७० लपेला = भट्टी। अपेल = सदैव बना रहने वाला। रेल-पेला = भीड भाड।

७१ एत = इतने। भाय = वारी = गुण अथवा धर्म वाली, अनुभूति से जानी जान वाली। भुजगनि = सर्पों की टेढी गति, बालो की, श्याम रग वालो की। टेक = प्रतिज्ञा।

७२ द्रोनाचल = द्रोणाचल, पर्वत विशेष। छिगुनी = सबसे छोटी उगली। छेम छत्र = रक्षा का छत्र। छिति = पृथ्वी। रच = थोडा। राचे – अनुरक्त होने पर। पानि = हाथ। परसि = स्पर्श करके। जानै कहा = क्या जाने। अजान = नासमझ। सुजान = चतुर। पुरु = भारी। प्रेमाचल = प्रेमपर्वत।

७३ मुहर लगाइ गए = रक्षित कर गए। पाती = सम्पत्ति। बियौ = दूसरा। घूनी = कपटपूर्ण। जनम सघाती = जन्म के साथी। थापन = स्थापना के लिए।

७४ सुघर = सुन्दर। सलाने – लावण्ययुक्त। बसीठ – दूत। अदेस = सन्देश। फूले फिरो = उत्साह म घूमना। सचार = पारुषी, पून। रचार = अग, पाश। सराग – सज्जित होना बनना। रसिक सिरोमनि – सबश्रेष्ठ रसिक, कृष्ण। सूर = सूर। पठाए = भेजे हुए।

७५ सरोजनि=कमलो। मकरंद=पराग, पुष्प रस। ढरारैं=बहता है। सचि=एकत्र करके। पारैं है=डालते है। गारै=गिरता है। मधुप=१ भ्रमर २ उद्धव। नेह =१ घृत २ प्रेम। अछेह=असह्य। बगारैं है=फैलाता है।

७६ असगुन=अपशकुन । कटाइ नाक=लक्ष्मण द्वारा सूपणखा की नाक कटाई। करि कूब=कूबड करके। फेरी फाटी है=पुन फट पड़ी है। पारेखौ=खेद। पाकी=पक्की, निश्चित। रंगभौन=रंग महल। पाटि देत=बराबर कर देते है।

७७ राइ=राजा। पच्छवारे=पक्ष वाले। लाइ=अग्नि। लाई=लगाई। अबलनि=स्त्रिया। ढरारे=कृपालु। ढार=साचा। ढारे=ढले हुए। अक्रूर= १ जो निर्दय न हो। २ एक यादव विशेष।

७८ छतीसे=छतीस विद्या जानने वाला, धूर्त। छलिया=छली। बीस बिसैं=निश्चय ही। बीर बामन=वामन भगवान। बसाच=अशभूत, अवतार, छलाग। साढे बाइस=बहुत छोटा। जोग छठ-आठैं=षडाष्टक योग ज्योतिष के अनुसार वर की राशि से यदि कन्या की राशि छठी या आठवी हो तो उसे षडाष्टक योग कहते है। इस योग का विवाह वमनस्यकारी माना जाता है। हरी =प्रेम। काच=योग। तीन गुण=सत्त्व, रज, तम=त्रिगुण। तीन तरह= तितर बितर होना। तीन-पाँच=चक्कर मे डालने वाली बातें करना।

७९ प्रससि=प्रशसा करके। मुष्टिक चनूर=मुष्टिक ओर चाणूर नामक दो योद्धा, जिनका कृष्ण से मल्ल युद्ध हुआ था। मल्लनि=योद्धाओ, पहलवानो। कसकायी=पीडा उत्पन्न हुई। सुख मूरि=सुख की जड, व्रज मे कृष्ण की उपस्थिति से आशय है। गाज=वज्राघात।

८० जोग मंतर=जोग मत्र, मतर शब्द से जादू-टोने की ध्वनि निकलती है। बिलग=पृथक। चेतवारे=सावधान। प्रानमूरि=प्राणाधार। मुकुर=दर्पण।

८१ व्रज जीवन=कृष्ण। अच्छिनि=आखो के। उघारि=खोलकर। लच्छ=देखो। लाग=अनुरक्त है। जीहा=जिया। समीहा=समीक्षा।

८२ काहू भाय=किसी भी तरह। उमहन=उऋण होना। हुती ही= थी। जुक्ति=युक्ति। भूरि=प्रचुर। लहन=प्राप्त करना। उगहन=वसूल करना।

८३ पुरतीं=पूरी पडती। किरीट काज=मुकुट बनाने हेतु। किरच= टुकडे। कुभायकी=बुरे भाव की। भावते=पसन्द आते। कीरति-कुमरि= वृषभानु सुता, राधा। दूबरी=दुबली। पताहू=पुन वधू।

८४ हरि=१ कृष्ण २ विष्णु। पानिप=१ कांति २ जल। भाजन= १ आधार २ बरतन। दृगजल=आखो के कोर। तपाक=वेग पूर्वक। त्रिलोक =स्वर्ग, मर्त्य, एव पाताल लोक। ओक मडल=ग्रह तथा नक्षत्रों का मडल।

ब्रह्मद्रव=१ कृष्ण की कांति से युक्त अश्रुजल २ गंगा की धारा। हर=शंकर। हरगिरि=कैलाश पर्वत। पैठन=प्रवेश करने के लिए। आधे कान=रचमात्र भी।

८५ वसियै=वैसी ही। पुरंदर=इन्द्र। कृपा=विपरीत लक्षणा से राप। बलि=सखी, सखा। नातरु=नहीं तो।

८६ बिलखाइ=बिलखकर। गोधन=गोवर्धन। चख=नेत्र। निहोरि=आग्रह करे। दमकति=जगमगाती हुई। दिव्य=भव्य। इन्द्र-कोप लोपक=इन्द्र के क्रोध को लुप्त करने वाला।

८७ विपिन=वन, वनस्थली। वसन्तिकावली=वसन्त ऋतु की शोभा। पियराने -पीले पडे हुए। बौर=१ बौर से युक्त २ पागल। वृन्द -समूह। लसत=शोभित होते हैं। रसाल=१ आम २ रसवती। पिक=कोयल। बागिनि=१ बगिया, २ बालाए। चवाव=चवा चुगली। पतझार=१ पत्तो का झडना २ लज्जा न रहना। तरुनि=१ वृक्ष २ स्त्रियां। बहरि=बीहड। बतास=वायु। काम विधि=कामदेव रूपी विधाता। वाम=विपरीत। चला=सृष्टि। मीन मेष=१ त्रुटि निकालना २ मीन तथा मेष राशियो मे ही वसन्त ऋतु होती है।

८८ जीवन=१ जल २ प्राण। दीन=१ उल्लासहीन २ दुखित। दीखै=दिखलाई पडता है। बबाई बान=१ तीव्र वायु २ निंदा की बातें। जार्यो अग=१ अंगो को जलाने वाला अर्थात सूर्य २ जिसका अंग जल गया है अर्थात कामदेव। विधाता=१ स्वामी २ व्यवस्था करने वाला। ठसक=अभिमान। बगर बगर=घर घर। वृषभानु=१ वृष राशि का सूर्य, वृष राशि में तीव्र गर्मी पडती है २ राधा के पिता के नाम जो बरसाना के राजा थे।

८९ पुरवा -पुरवैया हवा। पीव-पीव=पी-पी, प्रियतम प्रियतम। चपला=बिजली।

९० ललात=१ ललचना २ ललचाता। कंज=कमल। दिग-गाथ=दशा की अभिलाषा। विरह विधु -विरह रूपी चन्द्रमा। सालत घनी रहै=गहरी चोट मारता रहता है। पंचसरन=कामदेव। उमह ठनी रहै=उमडन रहते हैं। फरद=पट्टा, लेखा। दवामी=स्थायी।

९१ रीत=खाली। नियम=तरतम। कुसुमायुध=कामदेव। दुरे=छिपे। तातैं=इसलिए। चारो=उपाय। मानस=१ मानसरोवर २ हृदय। पाला=तुषार। आसा १ दिशा २ आशा। बारि=१ जल २ एक बार। अनत=अन्यत्र। दिगतनि मे—दिशाओ में।

९२ चाँपि चाँपि -दबा दबाकर। ठिठुर=शीत। पटाम—पर्त, आवरण। अलिनि -१ भ्रमरियां २ सखियां। सनी—डूबी। माधव—१ कृष्ण २ बसंत।

९३ मन मानिनी—मन को मारने वाली गोपियां। मसीत -मस्जिद। जाम

=जाला, ज्ञान योग आदि के प्रपंच। पैरिबौ=तैरना। प्रमानत=सिद्ध करते हो। प्रतच्छ=प्रत्यक्ष।

९४ बिहाल=व्याकुल। सिधाइयो=चले जाइए। सिरताज=शिरोमणि, कृष्ण।

९५ जनि=मत। हा-हा खाइ=बिलखकर। त्रास=कष्ट। सास लीजियौ=साँस लेना, चर्चा करना।

९६ ताजन=ताडना, कष्ट। रस=आनन्द। परिचारिका=दासी। बिवेक=ज्ञान, यहाँ छल कपट की बातों से आशय है।

९७ जित तित=जहाँ-तहाँ। आरति=पीड़ा। गुंज=घुंघची। सजाव दही=जामन लगाया हुआ दही। मही=मट्ठा। दलकति=काँपती हुई। पाँसुरी=पसलियाँ। पीत पट=पीताम्बर। नवनीत=मक्खन। सुरवारि=सुरीली।

९८ नाइ=झुकाकर। भाषन की=कहने की। महि जात है=भूमि पर गिर जाते हैं। ठाढ़ जात हैं=स्थिर, जड़वत हो जाते हैं।

९९ ब्योंत=उपाय। फुरति=फूटती। हीतल=हृदयतल। लागै=स्पर्श होने ही, लिखत ही।

१०० अलापि=बकते हुए। हलबल से=हड़बड़ाए से। सुदेश=स्वदेश (ब्रज)। अविरल=लगातार। चंद्रहास=तलवार। चल-अचल=जड़ चेतन।

१०१ गरुवाई=गुरुता। हमेव=अहंकार। हरुवाइ=हल्कापन। बहिराइ कै=निकालकर। तमाई=१ ताँबापन २ तमोगुण। बिनसाइकै=नष्ट करके। धौंक=धौंकनी। धमाइ=फूँककर। कोदनि=दिशाओं। गोप की बधूटी=गोपियाँ। मार=मारण किए हुए। पार=पारा=एक चंचल पदार्थ। मुरकाइकै=छिड़ककर, डालकर।

१०२ सारथी=रथ चलाने वाला। नीठि=कठिनता से। दीठिन=दृष्टि से। कूल=किनारा। कलिन्दी=यमुना। दऍंदी=दमासी। निगूरि=कफकर।

१०३ हुरास=हताशा। ऊन=कम। सून=शून्य। अरथ-उदास=अर्थ शून्य। गौन=गमन।

१०४ कंचुली=अशुद्धि-कालिमा, पारे के मल केंचुल कहे जाते हैं। भरि=भरी। सुभ-गोली=कल्याण की तरलता से युक्त। जोगनि=रासायनिक प्रयोग। भावि=भावना, दोष दूर करने तथा गुण-वृद्धि के लिए क्वाथ, स्वरस आदि के द्वारा जो घोटने की क्रिया होती है उसे भावना कहते हैं। अमित=अपरिमित, अधिक। प्रमान=मात्रा। घट-अंतर=हृदय रूपी घड़े में। धूम=धुआँ। रसायन=औषधि।

१०५ नवाए=झुकाए। गुन-गौरव=गुण की गरिमा। गरब-गाढ़ी=गर्व रूपी गाढ़ी। नेतम=नेता हार। तुमड़ी=तूंबी। गूदरी=चिथड़े, पट-कलाप

पुराने कपडे ... दरि ...त हैं=दबा लेते हैं। आनन=मुख।

१०६ पौरि=मुख्य द्वार ... सामने करके। निचौहैं—नीचे।

उक्सौं हैं=ऊपर करके। ... पोछते, सम्भालते। वहोलिनि=कुर्ते की

१०७ चकात=चकित ... पोछते, सम्भालते। वहोलिनि=कुर्ते की बाँह। राजै=सुशोभित है।

१०८ रज=धूल। बलबीर=श्रीकृष्ण। सद्य=ताजा। पुहुमी=पृथ्वी। काछि=गोद में।

१०९ तार=तारतम्य। सरि लेन देहु=शांत हो जाने दो। पुरन देहु=स्फुरित होने दो। नसुक=थोड़ा। कढत=बाहर आते हुए।

११० हिरानी=खो गई। दारुन=भीषण। दरर्रनि=धक्के में, टकराने में। झार=लपट।

१११ निषेधन=१ वर्ज्य अकर्तव्य २ मना करना, सगुणोपासक को मना करना। विधान=१ कर्त्तव्य २ निर्गुणोपासक का प्रतिपादन करना। काली=कालियनाग। दवानल=दावाग्नि। सिवान=सीमा। अधर=ओष्ठ। जाले=पपडी पड गई, सूख गए। कसाले=कष्ट। लाले पर प्रान के=प्राण रक्षा कठिन हो गई।

११२ द्रव्य=पदार्थ। बारिद=मेघ। वारि=जल। अचयौ=१ पिया २ आचमन किया। उपच्यौ=उलटना, उलटी होना। हरि हरि=१ धीरे-धीरे २ कृष्ण-कृष्ण। बरि-वरि- जल-जलकर।

११३ पन=१ प्राण, ज्ञान तथा योग का प्रचार करने का प्रण २ सौदा, सूक्ष्म। तुल्यौ=तुल सका। साठी - १ सरकण्डा २ पूंजी। हिरायौ=खो गया। नाठी=नष्ट हो जाने पर। माठी=मट्ठा। आँठी=दही का थक्का। पूरि=रमना, मलना।

११४ जोप=यदि। वट—वृक्ष विशेष पुराणों के अनुसार वटवृक्ष का नाश प्रलय में भी नहीं होता। भूपति=राजा। पुण्यपाथ=पुण्यजल गंगाजल।

११५ एतौ=इतना। स वेदन=दुख के साथ। बिलग=बुरा, दुख। धुरीन=धुरी, आधार।

११६ कुटीर=कुटी। रम्य=सुंदर। तीर=किनारा। रौन=रमणीक। चितावन=सजग करने, चेतावनी देने। इतै=यहाँ।

११७ भाठी=भट्टी। लुकाठी=जलता हुआ कपडा बंधी लकड़ी। लाग=१ धातु को गलाने हेतु दिया जाने वाला ताला पुट। २ सम्बन्ध। सुहाग=१ सौभाग्य सुहागा। अदाग=शुद्ध। सुवृत्त=सुंदर वृत्ताकार। परि=पक्ड कर। मरीचि—किरण। लाव=लौ, लगन। लाग=प्रेम। तरुन=तरुण, प्रजड से आशय है। तरनि=सूर्य। बाति मनि—सूर्यकान्तमणि।

० ० ०